धर्म के सूत्र

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म के सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म के सूत्र

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

© आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान)

संपादक
मुनि श्रीचन्द्र 'कमल'

प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी, प्रबन्धक : आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राज.)
मूल्य : तीस रुपये, संस्करण २०००, मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

DHARAM KE SUTRA by Acharya Mahaprajna Rs. 30.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुति

धर्म एक रहस्यपूर्ण और उलझा हुआ शब्द है। इसकी अनगिन व्याख्याएं की गईं, फिर भी इसका रूप सर्वथा अनावृत नहीं हुआ। कुछ व्याख्याओं ने इसके स्वरूप पर आवरण भी डाला है। इस स्थिति में मनुष्य का विवेक ही उसके लिए आलोक-दीप बन सकता है।

जीवन का तमिस्रा में गहराते हुए अंधकार से मुक्त होने का एक मात्र उपाय है—धर्म, इसीलिए उसे दीप कहा गया है। उसमें शरण देने की क्षमता है, इसलिए उसे द्वीप भी कहा गया है। इस दीप में स्नेह भरने की कुछ विधियां हैं, पद्धतियां हैं, कुछ सूत्र हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उनका सार संकलित है।

वि. सं. २०२८ की बात है। मेरी संसारपक्षीया माता साध्वीश्री बालूजी अस्वस्थ थीं। वे गंगाशहर में विराज रही थीं। उनसे मिलने के लिए मैं कुछ साधुओं के साथ गंगाशहर गया था। उन दिनों वहां धर्म के विषय में प्रवचन की शृंखला चली थी। प्रस्तुत पुस्तक में वे प्रवचन संकलित हैं। उनका संकलन व सम्पादन मुनि श्रीचन्द्रजी ने किया है। इससे धर्म की कुछ आलोक-रश्मियों को पकड़ने में सुविधा हो सकेगी। सहज-सरल भाषा में प्रदत्त प्रवचन जन-साधारण के लिए भी सहज पठनीय बन सकेंगे।

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

१.	धर्म : कितना महंगा कितना सस्ता?	१
२.	धर्म आवश्यक क्यों?	११
३.	धर्म कैसे?	१६
४.	धर्म की व्याख्या	२७
५.	धर्म है आंतरिक संपदा	३१
६.	धर्म के साधन—तपस्या और ध्यान	३६
७.	सम्यग्दृष्टि (१)	४२
८.	सम्यग्दृष्टि (२)	४८
९.	सम्यग्दृष्टि (३)	५३
१०.	सम्यग्दृष्टि (४)	६२
११.	आस्तिक्य	६८
१२.	धर्म की तीसरी कक्षा—व्रती बनना	७६
१३.	व्रतों की उपयोगिता	८४
१४.	परिवर्तन का घटक : धर्म	९१
१५.	स्वभाव-परिवर्तन	९६
१६.	संस्कारों का परिवर्तन	१००
१७.	सुख क्या है (१)	१०५
१८.	सुख क्या है (२)	१११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. धार्मिक की कसौटी ११६
२०. प्रामाणिकता का मूल्य १२२
२१. धर्म का व्यावहारिक मूल्य १२८
२२. सामायिक धर्म १३४
२३. धर्म और रूढ़िवाद १४०
२४. धर्म एक : मार्ग अनेक १४८
२५. धर्म और विज्ञान १५४
२६. धर्म का सार्वभौम रूप—ध्यान १६०
२७. भविष्य की परिधि : वर्तमान का केन्द्र १६५
२८. हिंसा और अहिंसा १७०
२९. जीवन में अहिंसा का रूप १७७
३०. समाज के परिप्रेक्ष्य में अर्थहिंसा और अनर्थहिंसा १८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म : कितना महंगा कितना सस्ता?

आज हम महंगाई के युग में जी रहे हैं। सुना है, एक युग था जो बहुत सस्ता था। आज जीवन की सारी यात्रा बहुत महंगी हो गई है और धर्म भी हमें महंगा या सस्ता दीखने लगा है। आज तो आदमी धर्म को भी पैसों के बटखरों से तौलने लग गया है। आचार्य भिक्षु ने इस विषय में एक सूत्र दिया था—धर्म त्याग में है, भोग में नहीं, धर्म अमूल्य है, इसकी कीमत नहीं आंकी जा सकती। त्याग न सस्ता होता है और न ही भोग महंगा। पूछा गया—धर्म मोल मिलता है या नहीं? उत्तर में कहा गया—जो मोल में मिले वह धर्म नहीं, अधर्म है। तात्पर्य यह है कि धर्म का कोई मूल्य नहीं होता।

प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण अर्थ के साथ जुड़ा है। बल्कि यह कहें कि जीवन की सारी यात्रा ही अर्थ पर निर्भर है। समाज का सारा विकास अर्थ-सापेक्ष होता है। मार्क्स ने समाज का अध्ययन अर्थ के उतार-चढ़ाव के आधार पर ही किया था। अर्थ के उतार-चढ़ाव के आधार पर समाज बनता है, बिगड़ता है। बहुत सारी घटनाएं अर्थ के साथ जुड़ी हुई होती हैं, इसलिए आदमी धर्म को सस्ते और महंगे रूप में मीमांसित करे तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। प्रश्न है—मूल्य का। मूल्य निरपेक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं होता, वह सदा सापेक्ष होता है। धर्म का ही नहीं, लगभग हर पदार्थ का मूल्य सापेक्ष होता है।

एक संन्यासी राजा से मिला। चर्चा के दौरान संन्यासी ने कहा—'त्याग बहुत मूल्यवान् होता है।' राजा ने इस बात से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहा—'महाराज! आपने तो बचपन में ही संन्यास ले लिया अतः आपकी दृष्टि में त्याग ही सबसे अधिक मूल्यवान् है। मूल्यवान् है 'राज्य'। इतना बड़ा अधिकार, वैभव, सम्पदा और सुख-सुविधा! जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। राज्य की तुलना में त्याग की कोई कीमत नहीं।'

संन्यासी ने कहा—'महाराज! मैं यथार्थवादी हूं, अतः बहस में उलझना नहीं चाहता, किन्तु क्या आप मेरे एक प्रश्न का उत्तर देंगे?' राजा सहर्ष उत्तर देने को तैयार हो गया। संन्यासी ने कहा—'आप कल्पना करें कि जंगल में गए और रास्ता भूल गए, भटक गए। जेठ की चिलचिलाती धूप। भटकते-भटकते प्यास का प्रकोप बढ़ा। दूर-दूर तक कहीं पानी का नामोनिशान नहीं। प्राण-पखेरू उड़ने की तैयारी में हैं। उस समय दैवात् कोई पथिक मिल जाए और वह एक गिलास ठंडा पानी पिला दे, तो आप क्या करेंगे?' राजा बोला—'मैं उसे अपना आधा राज्य दे दूंगा, क्योंकि प्राणों की तुलना में आधा राज्य कुछ भी नहीं है।'

संन्यासी बोला—'आपने ठीक ही कहा। महाराज! कृपया एक प्रश्न का उत्तर और दें। मान लें आप कि गर्मी के कारण मूत्रावरोध हो गया। उस अवरोध से सारा शरीर चरमरा गया। बेचैनी बढ़ी और प्राण छटपटाने लगे। ऐसी स्थिति में कोई चिकित्सक आए और एक ही पुड़िया में सारा कष्ट दूर कर दे तो आपको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कितनी शान्ति और सुख मिलेगा! उस स्थिति में आप क्या करेंगे?' महात्माजी! यदि ऐसी स्थिति आ जाए और मृत्यु के मुख से कोई मुझे उबार दे तो मैं उसे आधा राज्य दे दूंगा।'

संन्यासी बोला—'समझे महाराज! आपके राज्य का मूल्य है—सिर्फ दो गिलास पानी। एक गिलास पानी प्यास को मिटाने के लिए और एक गिलास पानी उस पानी के अवरोध (मूत्रावरोध) को मिटाने के लिए।'

राजा यह सुनकर अवाक् रह गया कि उसके वैभवशाली और विशाल साम्राज्य का मूल्य है—केवल दो गिलास पानी।

मूल्य सदा सापेक्ष होता है। किसी वस्तु का मूल्य न ज्यादा होता है और न कम। न कोई सस्ता होता है और न कोई महंगा। देश, काल और परिस्थिति के अंकन को छोड़कर हम किसी भी वस्तु को न सस्ता कह सकते हैं और न महंगा। निरपेक्ष मूल्य किसी का नहीं होता।

दृष्टिकोण दो प्रकार के होते हैं—एक अस्तित्ववादी दृष्टिकोण, दूसरा उपयोगितावादी दृष्टिकोण। अस्तित्ववादी दृष्टिकोण में सस्ता या महंगा जैसी भाषा नहीं होती, किन्तु जब अस्तित्व की दृष्टि से हटकर हम उपयोगिता के क्षेत्र में जाते हैं तो वहां 'सस्ते या महंगे' की भाषा बनती है। वहां वस्तु की उपयोगिता के आधार पर उसका मूल्यांकन होता है।

धर्म के साथ जब अर्थ का सम्बन्ध जुड़ता है तब 'सस्ता और महंगा' का प्रश्न हमारे सामने आता है।

जीवन के चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। प्रत्येक व्यक्ति इन चारों के साथ जीता है। धर्म और मोक्ष तथा अर्थ और काम—ये दो युगल हैं। अर्थ और काम—ये दो आपस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में जुड़े हुए हैं। व्यक्ति में कामना होती है और कामना पूर्ति का साधन है—अर्थ। इस युगल में अर्थ है साधन और काम है साध्य।

एक युगल है—धर्म और मोक्ष। मोक्ष है साध्य और धर्म है उसकी प्राप्ति का साधन। धर्म का सम्बन्ध मोक्ष के साथ है।

मनुष्य का जीवन कुछ ऐसा है कि उसमें रेखाएं खींचना एक समस्या है। इतना सब घुला-मिला है कि उसे अलग करना कठिन है। हर व्यक्ति में पूर्ण विवेक नहीं होता, इसलिए आसपास की वस्तु को वह एक ही मान लेता है।

आचार्य भिक्षु ने कहा—त्याग धर्म है। वह अमूल्य है। यह एक सीधी-सी बात है, पर आप कहेंगे—आचार्यश्री जहां जाते हैं वहां कितनी व्यवस्थाएं करनी पड़ती हैं और वे सारी व्यवस्थाएं अर्थ के द्वारा होती हैं। इतनी सारी व्यवस्थाओं के बाद हम कहीं धर्म की आराधना कर पाते हैं। इस दृष्टि से कितना महंगा हो जाता है धर्म? 'धर्म अमूल्य है'—यह कथन कहां तक सिद्ध हो पाता है?

आचार्य भिक्षु ने इस प्रश्न के उत्तर में जो विवेचन दिया, वह मार्मिक है। विडम्बना यह है कि आचार्य भिक्षु के अनुयायी भी उनके सिद्धान्तों से पूर्ण परिचित नहीं, इसलिए उनके मन में स्पष्टताएं नहीं होतीं। वे छोटी-छोटी बातों में उलझ जाते हैं। वे उलझते जल्दी हैं और सुलझते भी जल्दी हैं। इस डांवाडोल स्थिति का मूल कारण है—तत्त्व की अनभिज्ञता। तात्त्विक पृष्ठभूमि में आस्था का दृढ़बन्ध होता है। यह बहुत आवश्यक है कि धर्म के विषय में आचार्य भिक्षु का मर्मस्पर्शी सिद्धान्त जाना जाए। धर्म के क्षेत्र में आचार्य भिक्षु ने जो मीमांसा की, जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र दिए और उनका जो विस्तार श्रीमज्जयाचार्य ने किया, वैसा प्रतिपादन बहुत कम आचार्यों ने किया है।

आचार्य भिक्षु ने व्यवस्था और धर्म-आराधना की सूक्ष्म विवचेना की है। इन दोनों के बीच उन्होंने एक सूक्ष्म रेखा खींची है। एक व्यक्ति धर्मगुरु के दर्शन करने, धर्माराधना करने रेल में बैठकर कहीं जाता है तो वह धर्म नहीं है। धर्म वह है जिस क्षण में वह मन, वचन और काया से निरवद्य आचरण करता है। धर्म उसी क्षण का होता है, शेष का नहीं। शेष क्षण की प्रवृत्तियां उसके साथ जुड़ी हुई व्यवस्थाएं हैं। व्यवस्थाएं अलग होती हैं और धर्म अलग होता है। इस तथ्य को हम उचित रूप से समझ लें कि पहले-पीछे जो जुड़ता है, वह उसकी अनिवार्यता है, धर्म नहीं। धर्म उसी क्षण में है जिसमें पाप का अंशमात्र भी अवकाश नहीं है। पूरी प्रवृत्ति धर्म तब होती है जब उसमें सावद्यता नहीं होती। कोई व्यक्ति गुरु-दर्शन की भावना से घर से पैदल चल पड़ता है। भूमि को देख-देखकर चलता है। लम्बी यात्रा तय कर गुरु-दर्शन करता है। इस स्थिति में इसका प्रस्थान धर्म कहा जा सकता है। किन्तु अपनी दुर्बलता के कारण ऐसा कर नहीं सकता, वह वाहन का प्रयोग करता है। वाहन का प्रयोग वह धर्म के कारण नहीं, अपनी दुर्बलता के कारण करता है। धर्म वह है जिस क्षण में स्वाध्याय करते हैं, साधु-साध्वियों की उपासना करते हैं। अयतनापूर्वक आना-जाना, उठना-बैठना धर्म नहीं हो सकता। सामान्य आने-जाने के क्षण को और धर्म की आराधना के क्षण को एक नहीं माना जा सकता। दोनों का स्वरूप भिन्न है। एक सावद्य है, दूसरा निरवद्य।

इसी प्रकार धर्म की आराधना का क्षण और धर्म की आराधना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के साथ जुड़ी हुई व्यवस्थाओं का क्षण एक नहीं होता। धर्म न महंगा होता है, न सस्ता। ये दोनों शब्द अर्थ-सापेक्ष हैं। धर्म सीधा-सादा होता है। अर्थ के साथ धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म की आराधना पवित्र शरीर, पवित्र मन और पवित्र वाणी के द्वारा होती है। इसमें केवल तीन ही तथ्य अपेक्षित हैं—शुभ मन का योग, शुभ वाणी का योग और शुभ शरीर का योग। परन्तु आज का मानव विचित्र बन गया है। आदमी त्याग और बलिदान करना नहीं चाहता। वह धन देकर धर्म का लाभ उठाना चाहता है। वह स्वयं धर्म की आराधना नहीं करता किन्तु अर्थ के विनिमय से धर्म की आराधना का लाभ उठाना चाहता है तो यह कैसे सम्भव हो सकता है? यह चिन्तन की दरिद्रता है। इस चिन्तन ने धर्म की गरिमा को बहुत ठेस पहुंचाई है तथा धर्म को भी विक्रय की वस्तु बना डाला है। जैसे पैसे से अन्यान्य उपभोग की वस्तुएं खरीदी जाती हैं वैसे ही धर्म को भी हम पैसे से खरीदने की भूल कर बैठते हैं। इस क्रय-विक्रय की मानसिकता ने ही 'सस्ते और महंगे' के प्रश्न को पैदा किया है।

एक कथावाचक कथा कह रहा था। इतने में ही उसका पुत्र दौड़ता हुआ आया और बोला—'पिताजी! आज हल टूट गया। वर्षा अच्छी हुई है। हल के बिना जुताई और जुताई के बिना खेती कैसे होगी?' कथावाचक बोला—'चिन्ता मत कर, अभी व्यवस्था कर देता हूं।' कथा पूरी होते-होते पंडितजी ने प्रसंगवश कहा—'उपासको! एक महत्त्वपूर्ण बात बता रहा हूं, ध्यान से सुनो। तुम लोग शरीर से तपस्या नहीं कर सकते, ज्ञान की आराधना नहीं कर सकते और न कोई धर्म का विशिष्ट आचरण ही कर सकते हो। त्याग और तपस्या का आचरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कठिन होता है। यह किसी के वश की बात नहीं। धर्म का सीधा रास्ता भी शास्त्रों में बताया गया है। शास्त्रकार कहते हैं—

'व्यासं वा व्यासपुत्रं वा,
यो ददाति हलं खलं।
तस्य पुण्यप्रभावेन,
स्वर्गे झल्लर-मल्लरा ॥'

जो व्यक्ति व्यास या व्यास के पुत्र को हल देता है, उस पुण्य-प्रभाव से स्वर्ग में उसको आनन्द ही आनन्द प्राप्त होता है।

कितना सरल और सीधा रास्ता है। न तपस्या करनी पड़ती है, न त्याग करना पड़ता है। न तो स्वयं को खपाना पड़ता है और न ही कोई अन्य कष्ट उठाना पड़ता है।'

पंडित का इतना कहना मात्र था कि देखते ही देखते एक नहीं, दस हल आ गए। शास्त्र की बात को कौन असत्य माने!

यह स्वार्थ का दृष्टिकोण है। स्वार्थ का दृष्टिकोण रहा धर्म के नेताओं का और स्वार्थ का दृष्टिकोण रहा धर्म के अनुयायियों का। दोनों में स्वार्थ काम करने लगा। धर्म के नेताओं ने समझा कि इतने मात्र से यदि भावनाएं पूरी होती हैं तो धर्म को क्यों न अर्थ के साथ जोड़ दिया जाए! अनुयायियों ने सोचा—यदि पैसे से धर्म होता है तो क्यों न इस सस्ते या महंगे धर्म को अपनाया जाए। आज दोनों एक-दूसरे को ठग रहे हैं। धर्म के नेता अनुयायियों को ठगते हैं और अनुयायी धर्म के नेताओं को ठगते हैं।

इस चिन्तनधारा ने धर्म के क्षेत्र में अनेक विकृतियां पैदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की। इस चिन्तन से धर्म की आत्मा ही मर गई। धर्म होता है वास्तव में त्याग और संयम से, और त्याग, संयम का रास्ता बड़ा कठिन होता है। इस प्रकार के धर्म में सस्ते या महंगेपन की बात नहीं उठती। धर्म की आत्मा तक पहुंचने पर व्यक्ति इन मूल्यांकनों की दृष्टि से बहुत ऊपर चला जाता है। इतना व्यापक और विराट क्षेत्र है धर्म का।

राजा ने घोषणा की कि मैं गुरु बनाना चाहता हूं, पर गुरु उसी को बनाऊंगा जिसका आश्रम सबसे बड़ा होगा। उस समय राजा का गुरु बनना बहुत बड़ी बात होती थी। राजा जिनका अनुयायी होता, प्रजा भी उसकी अनुयायी बन जाती। सबके मन में कुतूहल जगा। प्रत्येक संन्यासी राजा को अपना भक्त बनाने की सोचने लगा।

अनेक धर्मगुरु एकत्रित हुए। एक ने कहा—'मेरा आश्रम पांच एकड़ जमीन में है।' दूसरे ने खड़े होकर कहा—'मेरा आश्रम दस एकड़ में है।' इस प्रकार आश्रम की भूमि एक-दूसरे से बढ़ती गई। राजा असमंजस में पड़ गया—किसे गुरु बनाए। अन्त में एक संन्यासी आया, बोला—'राजन्! मेरा आश्रम सबसे पड़ा है।' राजा ने पूछा—'कितना बड़ा?' संन्यासी बोला—'संख्या में बता नहीं सकता, स्वयं चलकर देखें।' राजा उस संन्यासी के साथ चल पड़ा। अन्यान्य संन्यासी भी कुतूहलवश उनके साथ चल पड़े। संन्यासी राजा को एक जंगल में ले गया और एक वृक्ष के नीचे खड़ा होकर बोला—'राजन्! यह है मेरा आश्रम। ऊपर जो आकाश है वह मेरे आश्रम की छत है और नीचे पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण में जितनी भूमि का विस्तार है, वह मेरे आश्रम की भूमि है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा ने संन्यासी के पैर पकड़ लिये और कहा—'आप मेरे धर्म-गुरु हैं, क्योंकि आप सीमातीत हैं। दूसरे सारे लोग सीमा में बंधे हुए हैं फिर चाहे वह सीमा बीस एकड़ की हो या पचास एकड़ की। सीमा तो आखिर सीमा ही होती है।' धर्म उस व्यक्ति को मिलता है जो सीमातीत हो जाता है।

धर्म सीमातीत होता है, मूल्यों से परे होता है। मूल्य की चर्चा कभी धर्म की चर्चा नहीं हो सकती, केवल उसकी परिधि की चर्चा हो सकती है। आज परिधि की चर्चा अधिक है, केन्द्र की कम। जब तक केन्द्र को नहीं पकड़ा जाता, मूल तथा हस्तगत नहीं हो सकता। आज केन्द्र और परिधि को पहचानने की दृष्टि साफ होनी चाहिए। धर्म का केन्द्र और धर्म की परिधि कभी एक नहीं होती। धर्म आत्मा की पवित्रता है और परिधि व्यवस्थाएं हैं। रुपयों का विनिमय परिधि में होता है, केन्द्र में नहीं। जब परिधि को केन्द्र मान लिया जाता है तो भ्रांतियां फैलती हैं। परिधि की बात परिधि की सीमा में जरूरी है और केन्द्र की बात केन्द्र की सीमा में जरूरी है। यह हो सकता है कि केन्द्र के साथ परिधि की बात सोची जाए, किन्तु दोनों का मिश्रण नहीं करना चाहिए। धर्म का धर्म की दृष्टि से मूल्यांकन करें और उसे उसी दृष्टि से तौलें।

यह एक लम्बी चर्चा है। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि धर्म का एकमात्र साधन है—त्याग, संयम। दूसरा और कोई साधन नहीं है धर्म का। अपना त्याग, अपना संयम (वृत्तियों और संज्ञाओं का संयम), बस इतना ही है धर्म! यदि मूल्य की भाषा में आंका जाए तो कितना सस्ता! एक कौड़ी भी नहीं खर्च करनी पड़ती। ध्यान धर्म है, सामायिक धर्म है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेक्षा धर्म है, श्वास को देखना धर्म है और शरीर के प्रकम्पनों को देखना-जानना धर्म है। यह बिना पैसे का धर्म है जिसमें कुछ भी नहीं खर्च करना पड़ता, केवल अपनी वृत्तियों को मोड़ना होता है, उनकी दिशा को बदलना होता है।

धर्म सबसे सस्ता है, पर वह महंगा बन जाता है व्यवस्थाओं के साथ। जब धर्म के साथ कुछ व्यवस्थाएं जुड़ जाती हैं, तब वह महंगा बन जाता है। हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि धन धर्म का साधन बन नहीं सकता। वह व्यवस्था का साधन हो सकता है और व्यवस्था का साधन तो वह है ही। धन के अर्जन, व्यय और संचय को उन्हीं लोगों ने धर्म माना जो धन से धर्म की बात करते हैं। इस मिथ्या सिद्धान्त ने अनेक विकृतियां पैदा की हैं। अतः आवश्यकता है इसे इच्छी तरह समझा जाए।

जो पैसों के द्वारा धर्म की आराधना करना चाहते हैं, उनके लिए तो धर्म सस्ता या महंगा हो सकता है, किन्तु हमारे सामने तो यह अर्थहीन प्रश्न है। हमारा धर्म जुड़ा हुआ है—ज्ञान से, दर्शन से और चरित्र से। ये तीनों अमूल्य हैं। इनकी आराधना मूल्य से नहीं हो सकती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म आवश्यक क्यों?

'त्वदास्यलासिनी नेत्रे, त्वदुपास्ति करौ करौ।
त्वद्गुणः श्रोत्रिणी श्रोत्रे, भूयास्तां सर्वदा मम ॥'

भगवन् मेरी दोनों आंखे आपके मुंह को देखने में तल्लीन रहें। दोनों हाथ उपासना में जुड़े रहें। दोनों कान आपकी स्तुति को सुनते रहें। भगवान के प्रति भक्त की यह कामना है।

जिन आंखों में पवित्र वस्तु देखने की भावना होती है, वे आंखें पवित्र हो जाती हैं। जो हाथ भगवान की उपासना में जुड़ जाते हैं, वे हाथ पवित्र हो जाते हैं। फिर उनसे अशुभ काम नहीं होते।

एक विचारक ने कल्पना की है भगवान ने मनुष्य को दो हाथ इसलिए दिए हैं कि एक हाथ से खाना खाए और दूसरे हाथ से मारता रहे। इस कल्पना के पीछे भूमिका यह हो सकती है कि उसने आदमी को दूसरों को सताते हुए देखा हो।

जो कान भगवान् की स्तुति में रस लेते हैं, वे अपवित्र बात सुनने में रुचि नहीं लेते। हमारे नेत्र, हाथ और कान पवित्र हों। इन तीनों के पवित्र होने से इन्द्रियां पवित्र बन जाती हैं, मन पवित्र बन जाता है और इनके पवित्र होने से आत्मा पवित्र हो जाती है। जब आत्मा पवित्र हो जाती है तब धर्म की बात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोची जाती है। भगवान महावीर ने कहा है—**धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई**—धर्म पवित्र आत्मा में ठहरता है। जहां मन की पवित्रता नहीं है, वाणी की पवित्रता नहीं है, विचारों की पवित्रता नहीं है, वहां धर्म नहीं ठहरता। सरल और शुद्ध हृदय में ही धर्म का वास होता है।

भगवान महावीर ने कहा—

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइणो।
जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइणो।

जो रात बीतती है, वह वापस नहीं आती। अधर्म करने वाले की रातें विफल हो जाती हैं।

जो रात बीतती है, वह वापस नहीं आती। धर्म करने वालों की रातें सफल होती हैं।

फ्रांसीसी कलाकार ने काल-देवता की एक प्रतिमा बनाई। उसके सिर के अगले भाग में केशों का गुच्छा दिखाया गया और पीछे के भाग में उसे गंजा दिखाया गया। इसका तात्पर्य यह है कि काल सामने से आता है, उसे पकड़ना चाहो तो पकड़ लो, अन्यथा भागने पर वह पीछे से पकड़ में नहीं आएगा।

धर्म की बात सुनते हैं, उसकी महिमा सुनते हैं। इतने वर्षों से उसका पालन कर रहे हैं, फिर भी आदेश मिलता है—धर्म करो। तब प्रश्न उठता है—वह धर्म क्या है? भगवान महावीर की वाणी में उसका उत्तर है—अहिंसा धर्म है, संयम धर्म है और तप धर्म है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म कहां रहता है, धर्म क्या है—यह हमने जाना। अब प्रश्न आता है, धर्म आवश्यक क्यों है?

हम खाते हैं, भोजन करते हैं। प्रश्न होता है—क्या भोजन करना आवश्यक है? एक ही उत्तर मिलता है—हां, आवश्यक है। रोटी खानी चाहिए और पानी पीना चाहिए—इसका उपदेश नहीं मिलता। जो जरूरी है, उसके लिए उपदेश की आवश्यकता नहीं होती। रोटी और पानी शरीर की मांग है। उपवास में रात को तारे गिनने पड़ते हैं। दो, तीन, चार दिन का उपवास हो तो फिर कहना ही क्या! पानी के बिना गर्मी में प्राण निकलने लग जाते हैं। रोटी और पानी की आवश्यकता अनुभव होती है, वैसे क्या धर्म की आवश्यकता अनुभव होती है? यदि नहीं, तो लगता है धर्म आवश्यक नहीं है। धर्म यदि चार दिन न किया जाए तो उपवास की तरह तारे गिनने नहीं पड़ते। फिर धर्म आवश्यक क्यों है? खाना खाओ, कपड़े पहनो, मकान बनाओ—इसके लिए कोई उपदेश नहीं देता। रोटी खाना, कपड़े पहनना और मकान बनाना आदि स्वाभाविक मांग है। बिना किसी के कहे ये सारे काम किए जाते हैं। धर्म कृत्रिम मांग है और थोपी हुई मांग है। धर्म पंगु है, अपने आप नहीं चलता। जब धर्म की आवश्यकता महसूस नहीं होती, तब उसे क्यों करना चाहिए?

उपवास, तप, स्वाध्याय के लिए प्रेरणा देनी पड़ती है, तब लगता है धर्म शरीर की मांग तो नहीं है। तब धर्म क्यों करते हैं? क्या उपदेशक वर्ग को कहने का संस्कार हो गया और श्रावक वर्ग को सुनने का संस्कार हो गया है?

मैंने प्रश्न को उभारा है और वह इसलिए कि नया बीज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोया जा सके। खेत की सारी भूमि को बोने से पहले उभारना पड़ता है। अपने हृदय में बीज बोना है तो उसे उखाड़ना ही होगा।

मानव के विकास की अशेष प्रक्रिया ज्ञान की उपलब्धि से जनित है। रोटी खाना सरल है, परन्तु रोटी बनाना और रोटी कमाना सीखना पड़ता है। रोटी कमाने में श्रम करना पड़ता है। यदि चिन्तामणि रत्न सुलभ होता तो किसी को कार्य करने की आवश्यकता नहीं रहती। यदि कल्पवृक्ष, कामकुंभ और कामधेनु सुलभ होती तो कुछ भी करना आवश्यक नहीं होता। श्रम करना कोई नहीं चाहता, फिर भी करना पड़ता है।

चिन्तामणि रत्न और कल्पवृक्ष मनुष्य की दस अंगुलियां हैं। मनुष्य इनसे श्रम करता है रोटी, मकान बनाता है। मनुष्य ने इन्हीं अंगुलियों के द्वारा विकास किया है। उसने धर्म के क्षेत्र में भी विकास किया है।

धर्म का पहला तत्त्व है—अहिंसा। पहले मनुष्य जंगल में रहता था, गुफा में रहता था। वृक्ष की छाल को ओढ़ता या नग्न ही रहता था। फिर मनुष्य ने विकास किया, समाज बनाया और बस्ती बनाकर रहने लगा।

समाज का निर्माण अहिंसा के आधार पर हुआ है। जंगली या हिंस्र जानवरों का समाज नहीं होता। वे एक-दूसरे को खा जाते हैं। समाज अहिंसा व प्रेम के आधार पर ही बनता है। एक-दूसरे की मर्यादा समझने पर समाज बनता है।

धर्म का दूसरा तत्त्व है—संयम। एक गली है। एक व्यक्ति मार्ग में खाट डालकर सो जाए और दूसरा रास्ता मांगे तब न मिले तो? प्रत्येक व्यक्ति अपनी मर्यादा को समझता है। वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानता है, मेरा घर आखिर मेरा घर है। यह रास्ता है, इसे रोकने का मेरा अधिकार नहीं। बिना संयम के घर नहीं चल सकता। घर में मिठाई आती है। घर के सब सदस्य बांटकर खाते हैं। कोई भी आग्रह नहीं करता कि सब मिठाई मुझे ही दे दो। संयम की बात जानते हैं, इसलिए आग्रह नहीं करते। संयम के बिना परिवार नहीं बनता।

धर्म का तीसरा तत्त्व है--तपस्या। क्या तपस्या के बिना समाज चल सकता है? नहीं चल सकता। सामाजिक जीवन में स्वार्थों का विसर्जन करना बहुत अनिवार्य है। कुछ व्यक्ति खाते हैं और कुछ व्यक्ति टुकुर-टुकुर कर सामने देखते रह जाते हैं। इस स्थिति में सामाजिक प्रतिक्रिया पैदा होती है। ऐसी स्थिति को (हिंसा या सामाजिक विघटन को) अल्पाहार (ऊनोदरी) व असंग्रह के प्रयोग से सहजतया टाला जा सकता है। इतिहास में अनेक मोड़ ऐसे आए हैं जहां ऐसी स्थितियों को सामाजिक लोगों ने टाला है।

इस परिप्रेक्ष्य में अहिंसा, संयम और तप क्या आवश्यक नहीं लगते? पांच दिन का प्रयोग करके देखिए कि ये आवश्यक हैं या नहीं? इनके बिना समाज और परिवार चलता है या नहीं, स्वयं अनुभव हो जाएगा। क्या कोई कह सकता है कि धर्म की आवश्यकता नहीं है?

क्रियाकाण्ड के बारे में प्रश्न हो सकता है, उपचार और व्यवहार की बातों में मतभेद हो सकता है, परन्तु धर्म की आवश्यकता नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

अरहन्नक नौका में जा रहा था। नौका जब मझधार में पहुंची तो देवता ने उसमें बैठे लोगों से कहा--'धर्म को छोड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो, अन्यथा नाव डुबो दूंगा।' सबने कह दिया—'प्राण बचाओ, हम धर्म को छोड़ते हैं।' परन्तु अरहन्नक नहीं बोला। देव ने दूसरी व तीसरी बार फिर कहा, तब अरहन्नक बोला—'देव! डुबोना और मारना तेरे हाथ की बात है, परन्तु धर्म को छुड़ाना तेरे हाथ की बात नहीं है।' सब घबराकर अरहन्नक से कहने लगे—'इतना-सा कह दो, तुम्हारा क्या लगता है? नहीं तो सारे मारे जाएंगे।' अरहन्नक बोला—'धर्म चोला नहीं है जो उतारकर रख दूं। धर्म को कैसे छोड़ूं? धर्म है अपनी आत्मा का स्वभाव। वह अहिंसा, संयम और तप के रूप में प्रकट होता है। मैं उसे कैसे छोड़ दूं? वह छोड़ा नहीं जा सकता।' देव अरहन्नक की धर्मनिष्ठा के आगे नत होकर चला गया।

मनुष्य धर्म, संयम और तप के बिना एक क्षण भी नहीं जी सकता। जिस समाज के मूल में अहिंसा, संयम भरा पड़ा है, उसको कैसे मानें धर्म की आवश्यकता नहीं है? सामायिक, जप और स्वाध्याय करना धर्म के विकास की प्रक्रिया है।

यह हमारा शरीर है। बाहर से चमड़ी दिखाई देती है। भीतर हड्डियां, रक्त, स्नायु और धमनियां हैं। यदि चमड़ी उघाड़ दें तो आदमी कंकाल दीखेगा। भीतर दीखने वाले ये तत्त्व ही हैं या और कुछ भी है? शरीर के भीतर चेतना है वह हमें दिखाई नहीं देती।

रेल की पटरी पर इंजन दौड़ता है, पर वह पटरी को छोड़कर इधर-उधर नहीं चल सकता। यदि पटरी से उतर जाए तो वह दुर्घटना कहलाती है। चींटी जब चाहे पटरी पर चढ़ जाती है जब चाहे उतर जाती है। गाड़ी और मोटर चलाने से चलती है। सारी शक्ति के मूल में मनुष्य की चेतना का ही विकास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। आज अणुबम, हाइड्रोजन बम, स्पुतनिक आदि का निर्माता मनुष्य है। उसने अपनी चेतना-शक्ति के द्वारा सारा कार्य किया है। अज्ञानी कुछ भी नहीं कर सकता। वह चेतना, ज्ञान हमारे मस्तिष्क के भीतर रहता है। सारी दुनिया का संचालन करने वाली चेतना है। उसका विकास धर्म के द्वारा हुआ है। तन्मयता और एकाग्रता से विकास होता है। चंचलता से विकास नहीं होता। वैज्ञानिकों ने इतना विकास किया है, वह तन्मयता व एकाग्रता से ही हुआ है। वैज्ञानिक आइन्स्टीन कार्य में रत थे नौकर खाना लेकर आया और रखकर चला गया। कुछ समय बाद एक मित्र मिलने आया। वह बैठा रहा। आइन्स्टीन ने उसको देखा तक नहीं। तब उस मित्र ने वह खाना स्वयं खा लिया और चला गया। आइन्स्टीन ने काम निपटने पर खाने के लिए हाथ बढ़ाया तो चुल्लू किया देखा। उसने सोचा—मैंने भोजन तो कर लिया है, फिर क्यों? वह वापस काम में लग गया। लोग उसे पागल कहेंगे, पर आप लोग निश्चित मानिए, आज तक दुनिया में बड़े काम ऐसे पागलों ने ही किए हैं।

चेतना को विकसित करने का साधन है धर्म। उसके बिना आत्मा में छिपी अनन्त शक्ति को प्रकट नहीं कर सकते। मन की एकाग्रता और ध्यान की प्रक्रिया से आत्मा परमात्मा बन जाती है।

कष्ट की परिस्थिति आ सकती है, पर चेतना के साथ जुड़े बिना उसकी अनुभूति नहीं होती। किसी के प्रिय व्यक्ति का देहावसान हो जाता है, पता न हो तो कष्ट नहीं होता। पता होने पर वह रोने लगता है। सेठ ने एक सराय में ठहरे हुए लड़के को बाहर निकालने का आदेश दिया, क्योंकि उसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोने से सेठ की नींद हराम होती थी। जब वह मर गया तो उसकी जानकारी की। तब पता लगा कि यह तो मेरा ही पुत्र है। तब सेठ को कष्ट की अनुभूति होने लगी। कष्ट कहां से आया? अनुभूति में से। कष्ट की परिस्थिति अलग होती है और कष्ट की अनुभूति अलग होती है। धार्मिक को कष्ट की परिस्थिति आने पर भी अनुभूति नहीं होती। धर्म की चेतना विकसित होती है तो व्यक्ति कष्ट से अलिप्त रह सकता है, फिर वह चाहे धन का वियोग हो अथवा शारीरिक बीमारी हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म कैसे?

'न चान्धकारो न च चाकचिक्यं,
न संशयो नापि विपर्ययश्च।
न चापि रोगो जनयेत् प्रभावं,
सदा प्रसन्ना मम दृष्टिरस्तु ॥'

मेरी दृष्टि सदा प्रसन्न व निर्मल हो। हर्ष और प्रसन्नता में भेद है। प्रिय वस्तु की प्राप्ति पर जो खुशी होती है, वह हर्ष कहलाता है। प्रसन्नता का अर्थ है निर्मलता। निर्मलता किसी वस्तु के निमित्त से नहीं होती। वह स्वाभाविक होती है, जैसे आकाश निर्मल है। हमारी दृष्टि प्रसन्न हो। न तो अंधकार चाहिए और न चाकचिक्य ही। अंधकार में दिखाई नहीं देता और चाकचिक्य में आंखें चुंधिया जाती हैं। संशय और विपर्यय भी नहीं चाहिए। संशय में निर्णय नहीं होता और विपर्यय में विपरीत ज्ञान होता है। मृग को ताल क्षेत्र में सूर्य की किरणें पड़ने से पानी का आभास होता है और उसके लिए वह दौड़ता है। कच्छ के रण में इस मृग-मरीचिका का हमने साक्षात्कार किया।

धर्म का प्रारम्भ

मेरी दृष्टि प्रसन्न हो—यह भावना शुभ भावना है। धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रारम्भ दृष्टि से होता है। हमारे जीवन की सद्प्रवृत्ति का प्रारम्भ दृष्टि से होता है।.

जिसकी दृष्टि सम्यक् होती है, वह सफल हो जाता है और जिसकी दृष्टि गलत होती है, वह विफल हो जाता है। हमारे जीवन की सफलता और विफलता का आधार दृष्टि ही है।

दर्शन पहले चाहिए। दर्शन से ज्ञान होगा। दृष्टि के आधार पर ही अंकन होता है वस्तु का और व्यक्ति का। एक व्यक्ति के प्रति किसी की धारणा बन गई कि अमुक गलत आदमी है। वह यदि अच्छा काम भी करता है तो उसका अंकन दृष्टि के अनुसार ही होगा। किसी व्यक्ति के प्रति यदि दृष्टि ठीक है तो उसके गलत काम करने पर भी ठीक मान लेते हैं। ज्ञान वैसा ही होता है जैसी धारणा होती है। इसीलिए भगवान ने कहा कि दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता। जिसे ज्ञान नहीं है, उसे चरित्र नहीं मिलता। चरित्र के बिना मोक्ष नहीं और मोक्ष के बिना निर्वाण नहीं होता। यह क्रम है।

धर्म कैसे?

'धर्म कैसे'—इस प्रक्रिया के छह द्वार हैं—

१. सुलभबोधी-मार्गानुसारी
२. सम्यक्दृष्टि
३. देशव्रती
४. महाव्रती
५. वीतराग
६. अयोग

पहली कक्षा सुलभबोधी की है। वह धर्म को नहीं जानता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु उसे धर्म की बात प्रिय लगती है। उसमें न त्याग है और न संवर। केवल उसके संस्कार अच्छे हो जाते हैं।

सम्यक् दर्शन

धर्म का प्रारम्भ सम्यक् दर्शन से होता है। जब तक मिथ्या दर्शन की गांठ नहीं खुलेगी तब तक धर्म करते हुए भी नहीं करते और जानते हुए भी नहीं जानते।

सम्यक् दर्शन दो प्रकार का होता है—एक व्यावहारिक और दूसरा नैश्चयिक। व्यावहारिक सम्यक् दर्शन में देव, गुरु और धर्म का ज्ञान, नवतत्त्व का ज्ञान, संवर और निर्जरा का ज्ञान होना अपेक्षित है। इनको रटने से सम्यक्दर्शी बन जाए तो कौन व्यक्ति इससे वंचित रहेगा?

निश्चय दृष्टि में वह सम्यक्-दृष्टि होता है जिसके अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ, सम्यक्मोहनीय, मिथ्यामोहनीय और मिश्रमोहनीय—इन सातों का उपशम, क्षय या क्षयोपशम होता है। जिसको सम्यक् दर्शन होता है, उसे आत्मा और शरीर का भेदज्ञान स्पष्ट हो जाता है। इस सम्यक् दर्शन की उपलब्धि होने से धर्म का द्वार खुलता है। वह पुरानी मान्यताओं को और पुरानी धारणाओं को तोड़ देता है।

मुंह में नमक रहने से मिश्री का स्वाद नहीं मिलता।

दो चींटियां आपस में मिलीं। एक नमक के पर्वत पर रहती थी, दूसरी मिश्री के पर्वत पर। आपस में बातचीत हुई। दूसरी ने कहा—मेरा घर मीठा है। चाहे जिधर से खाओ, मीठा ही मीठा है। पहली ने कहा—मेरा घर तो खारा ही खारा है। दूसरी आमन्त्रण देकर पहली को मिश्री के पर्वत पर ले आई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहली चींटी जब उसके घर गई तो अपने घर से नमक की डली मुंह में रख ली थी। मिश्री के पर्वत पर पहुंची। दूसरी ने कहा—चाहे जिधर से खाओ तुम्हें मिठास ही मिठास मिलेगी। पहली ने कहा—मुझे तो कुछ भी मिठास नहीं आता।

दूसरी ने पूछा—तुम्हारे मुंह में क्या है?

पहली ने उत्तर दिया—मेरे घर का खाना है, नमक की डली है।

दूसरी ने कहा—जब तुम्हारे मुंह में नमक है, तब मिठास कैसे मिलेगी?

जब तक मिथ्यात्व का नमक है तब तक सम्यक् दर्शन की मिठास कैसे आएगी? एक बार नमक को छोड़ो तब मिठास आएगी। सम्यक्दर्शी भी बनना चाहते हो और गलत धारणाओं, गलत मापदण्डों और मिथ्या दृष्टिकोणों में परिवर्तन भी करना नहीं चाहते, तब सम्यक् दर्शन कैसे मिलेगा?

हिन्दुस्तान की गरीबी में क्या धर्म की गलत मान्यताओं का हाथ नहीं है? धर्म की गलत मान्यताओं के कारण ही भारत का किसान भाग्य के भरोसे बैठा है। भाग्य को लिखते किसने देखा है? भाग्यवाद ने ही व्यक्ति को बेकार और आलसी बनाया है। किसी भी देश ने विकास किया है तो अपने पुरुषार्थ से ही किया है। पुरुषार्थ से भाग्य का निर्माण होता है। भगवान महावीर ने भाग्यवाद की एकांगिकता का खंडन करते हुए कहा है—कोरे भाग्य पर बैठना निरी मूर्खता है। पुरुषार्थ को आगे रखकर चलो।

उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषार्थ—इनसे कार्य सधता है और भाग्य का उदय होता है। पुरुषार्थ के बिना कर्म भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेशोदय में रह जाते हैं। पुरुषार्थ से विपाकोदय होता है। रूस में पहले इतने शिक्षित नहीं थे। इन चालीस वर्षों में सब शिक्षित हो गए। क्या चालीस वर्ष पहले उनके भाग्य का उदय नहीं था और अब भाग्य जाग गया? हिन्दुस्तान में पहले लड़कियां नहीं पढ़ती थीं। आजकल पढ़ रही हैं। क्या यह मानें कि आज की सब लड़कियों को ज्ञानावरण का क्षयोपशम है और पहले ज्ञानावरण का उदय था? क्षयोपशम भी पुरुषार्थ के बिना निकम्मा चला जाता है। चश्मा लगाने से दर्शनावरण का क्षयोपशम हो जाता है और चश्मा हटाने से दर्शनावरण का उदय हो जाता है।

चूरू और टमकोर के बीच एक गांव में राजपूत गुरुदेव के पास आया और बोला—'आजकल जमाना खराब आ गया। जमींदारी चली गई। दुःखी हो गए।' गुरुदेव ने पूछा—'घर में कितने आदमी हैं?' 'घर में छोटे-मोटे दस हैं।' 'कमाने वाले कितने हैं?' 'कितने क्या, मैं एक ही हूं।' 'दुःख जमाने का नहीं है, तुम्हारी गलत मान्यता का है। जब दो हाथ कमाएं और दस मुंह खाएं, वह जमाना सदा खराब है। चाहे वह सतयुग भी हो। श्रम के बिना विधाता भी कुछ नहीं कर सकता। प्यास लगी है, पर नौकर के बिना पानी कैसे पीएं? जहां ऐसी गलत मान्यता घर कर चुकी हो, काम करने को छोटा माना जाता हो, वहां कभी दुःख का अन्त नहीं होता।'

श्रम के अभाव में निकम्मापन आता है। उससे गरीबी आती है और फिर उससे बीमारी बढ़ती है। जापान आदि देशों में स्त्री और पुरुष दोनों काम करते हैं। वहां पूंजीपति भी कार्य में व्यस्त मिलेगा। कोई निकम्मा, खाली हाथ नहीं मिलेगा।

एक बार जयप्रकाशनारायण और उनके जापानी मित्र उत्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेश की यात्रा पर जा रहे थे। कई स्थानों पर लोग बैठे हास्य और बातें कर रहे थे। थोड़ी देर बाद जापानी मित्र ने कहा—'जे. पी.! तुम्हारा भारत तो बड़ा समृद्ध लगता है।' जयप्रकाश ने कहा—'इतना व्यंग्य क्यों करते हो? यहां तो टूटी-फूटी झोंपड़ियां हैं, फटे कपड़े और नंगे बदन वाले आदमी हैं। देखने से ही गरीब लगते हैं।

जापानी मित्र ने कहा—'देखो! ये कितने लोग खाली हाथ बैठे हैं। जापान में कोई भी निकम्मा नहीं मिलेगा। निकम्मापन समृद्ध देश में ही हो सकता है। एक ओर गरीबी है, खाने को नहीं है, फिर भी खाली बैठे बातें करते हैं।' जापान में जनरल स्टोर में चले जाइए। जो वस्तु पसन्द आए, उसको बता दीजिए। वह बिल आपको दे देगा। वह चेक नहीं करेगा कि आपने कितनी वस्तु ली है और कितनी बता रहे हैं। भारत में यदि ऐसे न पूछें तो चार दिन में स्टोर खाली हो जाए।

ऐसी आदत क्यों बिगड़ती है? आदत बिगड़ती है गरीबी के कारण।

स्वार्थी दृष्टिकोण

जो कार्य जहां नहीं करना चाहिए वहां करने का सोचते हैं, जो कर्तव्य है उससे जी चुराते हैं—यही स्वार्थी दृष्टिकोण है। जहां व्यक्तिवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, वहां समाजवादी बन जाते हैं, जहां समाज का प्रश्न आता है, वहां व्यक्तिवादी बन जाते हैं।

व्यापार में अनैतिकता को छोड़ने का प्रश्न आता है तब कहता है—मैं अकेला अनैतिकता नहीं करूंगा तो क्या होगा?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारा समाज करता है। सब लोग छोड़ते हैं तो मैं भी छोड़ दूंगा। सबके साथ रहूंगा। अकेले छोड़ने से क्या होगा?

जहां समाज का प्रश्न आता है कि समाज में अनेक लोगों को खाने के लिए नहीं मिलता, तुम मौज उड़ाते हो और फिजूलखर्ची करते हो। तुम्हें समाज के सहयोग के लिए कुछ करना चाहिए। तब उत्तर मिलता है—सब आदमी अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं। जिसने जैसा किया है, वैसा ही पाएगा। यह दृष्टि का दोष है। सारी बातों को स्वार्थवश पकड़ लेते हैं।

धार्मिक देश जितना अच्छा हो सकता है, उतना दूसरा देश नहीं। धर्म की गलत मान्यताओं को लेकर चलने वाला देश विकास की दृष्टि से गिर जाता है। भारत में धर्म की आत्मा लुप्त है और गलत मान्यताएं चल रही हैं। उसमें संशोधन करने की अपेक्षा है।

चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। सामाजिक व्यक्ति अर्थ और काम के बिना नहीं रह सकता। समाज का मूल है कामना। काम की पूर्ति अर्थ से होती है। केवल इनसे समाज नहीं चल सकता। धर्म की भावना की भी आवश्यकता होती है। धर्म का साध्य मोक्ष है।

इस पुरुषार्थ चतुष्टयी में दो हैं साध्य और दो हैं साधन। मोक्ष साध्य है और उसका साधन है धर्म। काम साध्य है और उसका साधन है अर्थ।

दो वर्ग हो गए—

मोक्ष के लिए धर्म।

काम के लिए अर्थ।

दोनों वर्गों को विरोधी मानना भूल है। हमारी दृष्टि साफ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो तो हम विरोध की भाषा में नहीं सोच सकते। जिस आंख से राजपथ देखते हैं, उससे गड्ढा भी देखते हैं। दो वस्तुओं को देखने के लिए अलग आंखों की आवश्यकता नहीं होती। मकान पर चढ़ने और उतरने के लिए दो सीढ़ियां नहीं होतीं। हंसने और रोने के लिए दो आंखें नहीं होतीं। विरोधी दीखने वाली वस्तु विरोधी नहीं होती, यदि दृष्टि साफ हो। धार्मिक जीवन का पहला आधार सम्यक् दर्शन है। दृष्टिकोण साफ हुए बिना अगली मंजिल नहीं मिलती। इसलिए धर्म की साधना में दृष्टि की प्रसन्नता व निर्मलता पहली आवश्यकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म की व्याख्या

हम संपर्कों की दुनिया में जी रहे हैं। संपर्क बहुविध होते हैं। सबसे बड़ा सम्पर्क होता है विचारों का। आचार्यश्री ने वैचारिक क्रान्ति की है। उनके युगप्रधान होने के लिए एक ही बात पर्याप्त है। उन्होंने धर्म के मूल्यों का वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में नया रूप स्थापित किया है जिससे अनास्थावान् भी आस्थावान् हुए हैं। जो बौद्धिक धर्म से दूर हट रहे थे, आज वे निष्ठावान् बन गए। मुम्बई में एक मंत्री महोदय आचार्यश्री के पास आए और कहने लगे—'धर्म करने की बहुत भावना रहती है, पर समय नहीं मिलता।' आचार्यश्री ने उत्तर दिया—'मैं आपको ऐसा धर्म बता सकता हूं, जिसके लिए अतिरिक्त समय की आवश्यकता ही न हो।' मंत्री महोदय बोले—'यदि ऐसा धर्म बता दें तो बहुत अच्छा होगा।' आचार्यश्री ने सुझाया—'आप जो कार्य करते हैं, उसमें प्रामाणिकता और नैतिकता रखिए।'

मंत्री महोदय ने फिर प्रश्न किया—'क्या इससे परलोक सुधर जाएगा?'

आचार्यश्री ने उत्तर दिया—'हां, सुधर जाएगा।'

अहमदाबाद में एक बहिन आचार्यश्री के पास आई और बोली—'मैं किसी को गाली नहीं देती, बच्चों को नहीं मारती,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबके साथ सद्व्यवहार करती हूं, पर धर्म के लिए समय नहीं निकाल सकती।'

आचार्यश्री ने उत्तर दिया—'तुम्हारा व्यवहार अच्छा है, यही तो धर्म है।'

दूसरी ओर ऐसे लोग भी हैं, जो धार्मिक कहलाते हैं, पर उनका ऐसा व्यवहार सामने आता है जिससे उनको धार्मिक कहने में संकोच होता है। उन्होंने ईमानदारी और सचाई के मूल्यों को दूर रखकर कुछेक क्रियाकांडों को धर्म मान रखा है।

गुरुदेव ने धर्म की नई व्याख्या दी जो बड़े-से-बड़े नास्तिक को भी आस्थावान् बना देती है।

दिल्ली के बुद्धिवादियों ने कहा—गुरुदेव! आपने धर्म की नई व्याख्या देकर हम बुद्धिवादियों की डिगती आस्था को स्थिर बना दिया है। प्राचीन को या शाश्वत को दूसरों के लिए ग्राह्य बनाने के लिए नया परिवेश देना होता है। आपने शाश्वत और परिवर्तन के बीच सामंजस्य स्थापित किया है। ऐसा काम विरले व्यक्ति ही कर सकते हैं, साधारण व्यक्ति नहीं।

देहली में दरियागंज में प्रोग्राम था। उसमें नवभारत टाइम्स के सम्पादक अक्षयकुमारजी जैन भी थे। पहले मैं बोला, फिर आचार्यश्री ने प्रवचन किया। फिर अक्षयकुमारजी खड़े हुए और बोले—आज तक मैं अपने को धार्मिक और आस्तिक कहने में संकोच का अनुभव करता था। आज आपने जो धर्म की व्याख्या दी है, उसके आधार पर मैं अपने को धार्मिक कहने का साहस कर सकता हूं।

लखनऊ में कामरेड यशपाल के पास कार्यकर्ता गए तो वे चौंके और कहा—'कहीं यशपाल जैन समझकर तो नहीं आए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं?' कार्यकर्ताओं ने कहा—'नहीं, हम कामरेड यशपाल के पास आए हैं।' फिर वे आचार्यश्री के पास आए। आत्मा पर तीन दिन तक चर्चा चलती रही। जैन धर्म को पढ़ने की उन्होंने अपनी भावना व्यक्त की। उनसे एक संबंध-सा बन गया। जब आचार्यश्री का धवल समारोह का पहला चरण बीदासर में मनाया गया उस अवसर पर वे 'झूठा सच' नामक अपना उपन्यास भेंट करने के लिए लखनऊ से आये।

गुरुदेव ने तेरापन्थ की सीमा को इतना विस्तार दे दिया है कि अजैन भी अजैन नहीं लगते। उन्होंने धर्म को युग की वेदी पर खड़ा कर दिया जिससे सारे सम्प्रदाय लाभान्वित हुए हैं। गुरुदेव जब दक्षिण यात्रा पर थे तब लोगों ने कहा—हमारे यहां अनेक आचार्य आए हैं, पर मानवता की बात करने वाला पहला आचार्य आया है। सब धर्मगुरु अपने-अपने सम्प्रदाय की बात करते हैं, परन्तु सम्प्रदाय से दूर रहकर मानवता की बात करने वाला पहला आचार्य आया है। वहां कोई भी जैन नहीं था फिर भी नहीं लगता था कि वे जैन नहीं हैं।

धर्म के क्षेत्र में गुरुदेव ने क्रांति की है। उन्होंने अपने शिष्यों में निष्पक्षता व तटस्थता की बात जंचा दी, जिससे उनमें सम्प्रदाय की बू नहीं आ सकती।

दर्शन के क्षेत्र में भी नए मूल्यों को प्रस्तुत किया है। लाखों-लाखों लोगों से सम्पर्क बना है। इस दिशा में गुरुदेव और उनके शिष्यों ने भागीरथ प्रयत्न किए हैं। परिणाम यह आया कि जो नजदीक थे वे दूर हो गए और जो दूर खड़े थे वे निकट आ गए। आप जानते हैं, महापुरुष कभी लकीर पर नहीं चलते। परम्परा का अनुगमन करने वाले सब होते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, परन्तु परम्परा में अपना योग देकर उसको विकसित करने वाले विरले ही होते हैं। आचार्य भिक्षु, जयाचार्य और आचार्य तुलसी उन महापुरुषों में थे जिन्होंने अपने कर्तृत्व से परंपराओं की नई लकीरें खींची हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म है आंतरिक संपदा

'तव प्रेष्योऽस्मि दासोऽस्मि, सेवकोऽस्म्यस्मि किंकरः।
ओमिति प्रतिपद्यस्व, नाथ! नातः परं ब्रुवे ॥

भगवान महावीर की स्तुति करते हुए कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है—भगवन्! मैं आपका प्रेष्य हूं, दास हूं, सेवक हूं और किंकर हूं। आप केवल स्वीकृति दे दें कि हां हो। बस इससे अधिक मुझको कुछ नहीं चाहिए।

क्या कोई प्रेष्य बनना चाहता है? क्या कोई किंकर बनना चाहता है? हर व्यक्ति मालिक बनना चाहता है। तब आचार्य ने भूल क्यों की—मैं प्रेष्य, दास, सेवक और किंकर बनूं। सब लोगों की मांग से उल्टी मांग क्यों की?

एक लड़का जा रहा था। रास्ते में चलते-चलते उसे भूख सताने लगी। इधर-उधर देखा तो एक झोंपड़ी दिखाई दी उसके पास गया। उसमें बाबा बैठा था। उसने प्रणाम किया और कहा—'बाबा! भूख लगी है, कुछ खाने को दो।' बाबा ने पूछा—'कहां जा रहे हो?' 'मैं तो नौकरी की खोज में निकला हूं।' बाबा बोला—'चेला क्यों नहीं बन जाते?' बाबा को चेले की भूख थी और यह सीधा आ ही गया था। अवसर का लाभ उठा, बाबा ने प्रश्न उसके सामने रख दिया। लड़का बोला—'चेला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या होता है, मुझे समझाओ।' बाबा ने कहा—'दो होते हैं, एक गुरु और दूसरा चेला। गुरु हुक्म देता है और चेला उसका हुक्म मानता है।' लड़के ने दो क्षण सोचकर कहा—'चेला तो नहीं बनना चाहता, यदि गुरु बना लो तो मैं बन जाऊं।'

आचार्य भी यदि यह मांग करते कि मुझे मालिक बना दो तो उचित मांग थी। परन्तु आचार्य ने विपरीत ही मांग की। गहराई से देखने पर ज्ञात होगा कि आचार्य की मांग बुद्धिमत्तापूर्ण थी। कोई भी व्यक्ति मन का, स्वामी बनना चाहता है तो उसे भगवान का किंकर बनना ही होगा। उसे परमतत्त्व या मुक्तात्मा (जिसका पूर्ण विकास हो चुका है) का दास बनना ही होगा। जो पूर्ण समर्पित होता है, वही अपनी आत्मा का विकास कर सकता है। जो अहं का भार ढोता रहे, वह कभी भगवान नहीं बन सकता, अपने हृदय में विराजमान प्रभु को नहीं पा सकता। भीतर बैठा भगवान आवरण से ढंका है, इसलिए दिखाई नहीं देता। आवरण को हटाकर देखो तब वह दिखाई देगा। किसी को निमंत्रण देना चाहते हो तो उसके लिए स्थान खाली करो। यदि हृदय बुराइयों से भरा रहेगा तो भगवान आएगा भी कैसे? उसके लिए बुराइयों को हटाकर स्थान खाली करो, फिर निमंत्रण दो।

नमि राजर्षि ने ऐसा ही किया था। जब वे दीक्षित हुए थे तब इन्द्र बोला—राजन्! आपने असमय में दीक्षा लेकर भूल की है। अभी आपके काम अधूरे पड़े हैं, उनको पूरा कर दीक्षित होना था। पहले प्रासाद बनाओ। वर्द्धमान गृह बनाओ, अट्टालिकाएं बनाओ, फिर बाद में दीक्षित होना।'

इसके उत्तर में राजर्षि नमि ने कहा—'जिसके मन में संदेह हो, वह घर बनाना चाहता है। जिसके स्थान न हो, वह घर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनाना चाहता है। मेरा घर पहले से बना हुआ है और वह बना रहेगा, उसे मिटाने वाला कोई नहीं है। घर वह बनाए, जिसका घर नहीं है या मिट गया है। मुझे बनाने की जरूरत नहीं है।'

यह था उनके समर्पण और आत्म-विश्वास का उत्तर। यह था धर्म की आस्था का उत्तर। यह है 'धर्म आवश्यक क्यों है' का उत्तर।

कोरा सुनना वैसा है, जैसा खाना। खाने की अपेक्षा पचाने का मूल्य अधिक है। खाने का मूल्य २ पैसा है और पचाने का मूल्य ९८ पैसा है। एक विचारक ने कहा है—

आदमी खाने से पुष्ट नहीं बनता, पचाने से पुष्ट होता है।

पढ़ने से विद्वान् नहीं बनता, याद रखने से विद्वान् बनता है।

आदमी कमाने से धनवान् नहीं बनता, बचाने से धनवान् बनता है।

बहुत खाने वाले, बहुत भूलने वाले और बहुत व्यय करने वाले पुष्ट, विद्वान् और धनवान् नहीं बन सकते। सुनना, मनन करना और निदिध्यासन करना विकास का क्रम है। भस्म रोग में चाहे जितना खा लो, सब स्वाहा हो जाएगा। वैसे ही केवल सुनते जाओ, सब स्वाहा हो जाएगा। सुनने के बाद मनन करना आवश्यक है। मैं प्रतिदिन कुछ-न-कुछ पढ़ता हूं, थोड़ा लिखता हूं। मेरा विश्वास है, जो पढ़ा जाए, उस पर स्वतन्त्रता से विचार किया जाए। 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' की तरह नहीं होना चाहिए। नींद लेने वाले या मूर्छित चेतना वाले व्यक्ति सब कुछ प्रमाण मान लेते हैं, किंतु जीवित व्यक्ति वैसा नहीं करता।

स्वामीजी के पास आसोजी श्रावक सामायिक कर रहे थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक में नींद आ गई। सामायिक का अर्थ है—पल-पल की जागरूता। उसका नींद से क्या मतलब? किसी कारण से उन्हें नींद आ गई। स्वामीजी ने देखा तो बोले—'आसोजी! नींद लेते हो?' उत्तर मिला—'नहीं, महाराज!' स्वामीजी ने दूसरी और तीसरी बार यही प्रश्न दोहराया, उत्तर भी वही मिलता रहा। चौथी बार स्वामीजी ने पूछा—'आसोजी! जी रहे हो?' उत्तर वही मिला—'नहीं, महाराज!'

पिछले तीन बार तो झूठा उत्तर था, परन्तु चौथी बार का उत्तर सत्य था। वास्तव में जो नींद लेता है वह जीता नहीं। जीता वह है, जो जागता है। हमारी चेतना का विकास जितना होता है, उतना ही हम जीते हैं। चेतना जितनी आवृत होती है, उतनी मृत्यु होती है। मृत्यु के क्षण में आदमी सारी बातों को भुला देता है, धर्म की आवश्यकता को भुला देता है। जागरूकता का क्षण मनन का होता है। ऐसा मत सोचिए कि बहुत पढ़ा-लिखा ही सोच सकता है। जो सोचता नहीं, उसकी सोचने की शक्ति नष्ट हो जाती है। आंख, कान आदि को भी काम में न लेने से उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। आयुर्वेद में लिखा है कि इन्द्रियों के अयोग और अतियोग से शक्ति नष्ट होती है, इसलिए योग करना चाहिए।

हमारे भीतर चेतना है। परम तत्त्व तक पहुंचने का विकास इसी चेतना के द्वारा हुआ है। हमारे भीतर इतनी शक्तियां छिपी हैं, उन्हें पहचान नहीं पाते। क्या महावीर आकाश से उतरे थे? क्या गांधी धरती से निकले थे? गांधी एक पतला-दुबला आदमी था, जिसने सारी दुनिया को हिला दिया। ऐसा क्यों हुआ? इसलिए कि उन्होंने अपने आपको पहचाना। जो अपनी शक्ति को नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहचानता, वह दूसरों को तो क्या अपने आपको भी नहीं पहचानता। कष्टों से घबराकर मनुष्य कहता है—हे राम! मुझे यहां से उठा लो। मेरे समान दुःखी और कोई नहीं है।

दुःख है कहां? अपने आपको नहीं पहचानते, इसीलिए दुःख है। भिखारी भीख मांग रहा था। सामुद्रिकशास्त्र के ज्ञाता ने उसको देखा तो सोचा—यह भिखारी नहीं हो सकता। यदि है तो मैं अपनी विद्या को छोड़ दूंगा। वह उसके पास गया और उसका परिचय पूछा। फिर कहा—'तुम भिखारी नहीं हो। अपना सही परिचय बताओ।' तब भिखारी बोला—'मैं सेठ का लड़का था।' धन चला गया। लाड़ में पला था, इसलिए काम सीखा नहीं था।' सामुद्रिकशास्त्र के ज्ञाता ने कहा—'मुझे अपने घर ले चलो।' साथ-साथ गया, किवाड़ खोला, एक कमरे में गया। उससे कहा—'एक फावड़ा लाओ।' भिखारी बोला—'मेरे पास नहीं है।' 'किसी से मांगकर ले आओ।' आखिर वह लाया और उसे खोदा तो एक-एक करके आठ शिलाएं निकलीं। उनके नीचे खजाना निकला। करोड़ों की सम्पत्ति देख भिखारी ने उनके पैर पकड़ लिये—'मुझे क्या मालूम, इतना धन भीतर पड़ा था।'

हमारे भीतर भी खजाना पड़ा है, पर उसे खोजने का प्रयत्न नहीं करते। क्या यह हमारा अज्ञान नहीं है? क्यों नहीं धर्म का फावड़ा लेकर आठ कर्मों की आठ शिलाओं को हटा दें? फावड़े के बिना शिला दूर नहीं होती और उसके बिना खजाना नहीं मिलता। इसलिए आत्मा के खजाने को प्राप्त करने के लिए धर्म की अत्यन्त अपेक्षा है। धर्म को अनावश्यक मानने वाले सचमुच अपनी संपदा से दूर रह जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म के साधन—तपस्या और ध्यान

'निर्ग्रन्थता परा या च, या चोच्चैश्चक्रवर्तिता।
द्वयं विरुद्धं भगवन्! त्वयि चैवोपपद्यते ॥'

भगवन्! आप में दो विरोधी बातें एक साथ रहती हैं—निर्ग्रन्थता और चक्रवर्तित्व। पास में कुछ भी नहीं, पहनने व ओढ़ने के कपड़े भी नहीं, केवल शरीर के सिवाय कुछ भी नहीं। वह है आपकी निर्ग्रन्थता। दूसरी ओर चक्रवर्ती का साम्राज्य—समवसरण और साधु-साध्वियों की परिषद्, देवता की परिषद्, धर्मचक्र, छत्र और अशोक वृक्ष। कहां निर्ग्रन्थपन और कहां चक्रवर्तिपन?

बहुत सुन्दर बात आचार्य ने कही है—जो निर्ग्रन्थ होता है, वही वास्तव में चक्रवर्ती होता है। जिसके पास कुछ नहीं, सारी दुनिया उसकी हो जाती है। एक व्यक्ति रहने के लिए मकान बनाता है, वह एक लाख का बनाता है। कोई दो लाख का, तो कोई पांच, दस लाख का बना लेता है। परन्तु साधु कभी-कभी उससे भी अधिक मूल्यों के मकान में ठहरते हैं। जिसका एक अपना है, उसके लिए सीमा है। जिसका अपना कुछ भी नहीं, सब कुछ उसका है। योग के एक आचार्य ने लिखा है—**अकिंचनोहमित्यास्व, त्रैलोक्याधिपतिर्भवि**—तू अकिंचन बन जा, तीन लोक तेरा हो जाएगा। जिसमें अकिंचनता नहीं आई,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसकी सीमा रहेगी। भगवान महावीर की निर्ग्रन्थता ने ही उनको असीम बना दिया। वे केवली बने, आत्म-साक्षात्कार किया। साक्षात्कार वही करते हैं जो निर्ग्रन्थ बन जाते हैं। अनुभव उन्हीं का जागता है जो निर्ग्रन्थ बन जाते हैं।

एक व्यक्ति गाड़ी में माल भर, गांव की ओर आने लगा। सूर्य ढलने लगा, सोचा—इधर से जाऊंगा तो चुंगी लगेगी। कहीं दूर से प्रवेश करना चाहा। अंधेरा बढ़ता गया और वह भटक गया। भटकते-भटकते प्रकाश के समय वह उसी जगह पर पहुंचा जहां से वह चुंगी के लिए टला था। अब वह पश्चात्ताप करने लगा।

कोई गाड़ीवान राजमार्ग को छोड़कर विषम मार्ग पर चला जाता है। ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर चलने से गाड़ी की धुरी टूट जाती है तब पश्चात्ताप करता है। वैसे ही, जो धर्म के राजपथ को छोड़ अधर्म के विषम पथ पर चले जाते हैं, वे वैसा ही पश्चात्ताप करते हैं जैसा कि भटकने पर गाड़ीवान करता है।

हम पहले निर्ग्रन्थता समझें, धर्म को समझें। हमें समझने के लिए साधन चाहिए। भगवान महावीर को साधनों की अपेक्षा नहीं थी। वे शास्त्र नहीं पढ़े, ग्रन्थ नहीं पढ़े। यदि उनका रास्ता लें तो हमें भी पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। हम सब महावीर नहीं बन सकते। उनका मार्ग दुर्गम था। भगवान महावीर ने बारह वर्ष तक तपस्या की। क्या यह कठोर कार्य है? नहीं, मेरी दृष्टि में नहीं है। उपवास करना मात्र कठोर नहीं है। कठोर चर्या है—ध्यान की साधना। भगवान ने तपस्या की, उसको हमने पकड़ लिया, पर मूल को छोड़ दिया। प्रश्न होता है—भगवान ने ध्यान के लिए तपस्या की या तपस्या के लिए तपस्या की?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सही उत्तर होगा—उन्होंने ध्यान के लिए तपस्या की। भगवान ने सोलह दिन-रात तक ध्यान किया—चार दिन पूर्व दिशा की ओर अभिमुख होकर, चार दिन दक्षिणाभिमुख, चार दिन पश्चिमाभिमुख और चार दिन उत्तराभिमुख। जो इस प्रकार ध्यान करेगा; वह क्या खाएगा, क्या पीएगा, क्या बोलेगा? खाए-पीए बिना उत्सर्ग भी क्या करेगा? आज लोगों ने भगवान की तपस्या को पकड़ लिया, परन्तु ध्यान को छोड़ दिया।

उस समय भारत पर अंग्रेजों का राज्य था। एक अंग्रेज कलेक्टर शिकार करने गया। चलता-चलता भटक गया। भूख लग गई। एक झोंपड़ी दिखाई दी। उसके पास गया। भीतर महिला थी। उसे हाथों से संकेत किया। उसने रोटी पर थोड़ा-सा साग रखकर उसके हाथ में रख दिया। कलेक्टर ने साग खा लिया और रोटी को तश्तरी समझकर फेंक दिया।

रोटी है ध्यान और साग है तपस्या। आज की तपस्या में रोटी फेंक दी जाती है। उपवास अच्छा है, पर उस तपस्या का अधिक महत्त्व है जो ध्यान का स्वाध्याय के साथ की जाती है।

पहले श्रावक पौषधशाला में जाकर उपवास और पौषध करते थे। आजकल घर में ही करते हैं। तपस्या में समय अधिक मिलता है, इसलिए भाई-बहिन, घर और दुकान का सारा काम उसी दिन निपटाते हैं। कई भाई तो उपवास में ताश खेलकर समय को व्यतीत करते हैं। तब भला उनको उपवास से आत्मशांति कैसे मिले? उपवास में आत्मालोचन, स्वाध्याय और ध्यान होना चाहिए। इस पद्धति से दो उपवास भी करेंगे तो अधिक लाभ होगा।

भगवान महावीर ने हर प्रवृत्ति के साथ सम्यक् शब्द जोड़ा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र। सम्यक् के बिना ज्ञान, दर्शन और आचरण का कोई महत्त्व नहीं है। ज्ञान मोक्ष का मार्ग नहीं है, दर्शन मोक्ष का मार्ग नहीं है। चारित्र मोक्ष का मार्ग नहीं है। सम्यक् विशेषण के बिना ये कामकर नहीं बनते। इनको सम्यक् बनाने का उपाय है—तपस्या, ध्यान और स्वाध्याय। आज लोगों में स्वाध्याय का अभ्यास कम है, पढ़ते कम हैं। भिक्षु स्वामी जैसा सहज ज्ञान सबका नहीं होता। प्रोफेसर प्रेमसुमनजी ने कहा था, "गुरुदेव तुलसी के संघ ने जो साहित्य दिया है; उतना किसी संघ ने नहीं दिया। 'मैं, मेरा मन, मेरी शान्ति' यदि इस पुस्तक को युवक लोग पढ़ लें तो उनके कई प्रश्न स्वयं मिट जाएंगे।" यह पुस्तक आचार्य महाप्रज्ञ की है।

कठिनाई यह है कि अपने श्रावक साहित्य से उतना लाभ नहीं उठाते, जितना अजैन लोग उठाते हैं। अपने साहित्य का विद्वान् लोग पूरा-पूरा प्रयोग करते हैं। परन्तु अपने श्रावक समाज को जानकारी भी नहीं है। प्रमाद है या मूर्च्छा है, पता नहीं, लेकिन पढ़ते तो नहीं हैं। यह अच्छा नहीं है। हम सोचते हैं, हमारे समाज का भी विकास हो। वे नये युग की नई दृष्टि को समझें।

गुरुदेव दिल्ली में थे। उस समय डॉ. शतकौड़ी मुकर्जी आए, जिनके बीसों ही छात्र प्रिंसिपल हैं। वे अंग्रेजी में ही लिखते हैं। उनका साहित्य भारत से बाहर अधिक चलता है। गुरुदेव ने मुझे फरमाया—"इनको जैन सिद्धान्त दीपिका सुना दो।" मैंने उनको वह ग्रन्थ सुनाया। दान-दया का सिद्धान्त सुनकर वे बोले—"यह दुर्भाग्य था कि भिक्षु स्वामी मारवाड़ के जन्मे, वे जर्मन में जन्म लेते तो काष्ट से भी अधिक मूल्यवान् होते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिक्षु स्वामी ने जितनी तर्कयुक्त बात कही थी, उतनी काण्ट ने भी नहीं कही।"

हमें पहली बार ऐसा सुनने को मिला, हमें प्रोत्साहन मिला। हमने समझा, हमारा दर्शन महत्त्वपूर्ण है। धवल समारोह पर गुरुदेव ने मुझे आदेश दिया कि भिक्षु स्वामी पर कुछ लिखो। मैंने 'भिक्षु विचार दर्शन' नामक पुस्तक लिखी। हिन्दुस्तान के दो सौ विद्वानों का अभिमत उस पुस्तक पर आया है। उन लोगों ने स्वीकारा है कि आचार्य भिक्षु महान् दार्शनिकों में से एक थे। कुछ विद्वानों ने लिखा है कि यह पुस्तक गीता के बाद दूसरा स्थान रखती है।

यदि गुरुदेव आधुनिक भाव और भाषा में अभिव्यक्ति नहीं देते तो यह स्थिति नहीं बनती। साहू शान्तिप्रसादजी ने कहा—"हम तेरापंथ को नहीं जानते थे, आपने जैन धर्म पर इतना कार्य किया है कि आज जैन सम्प्रदायों में तेरापंथ सबसे आगे आ गया है।" छोटी बात में उलझने वाले बड़ा काम नहीं कर सकते।

धर्म जीवन-कल्याण का साधन है। कर सकें तो करें; नहीं तो धर्म के नाम पर अधर्म को प्रोत्साहन न दें। लोगों का विकास इसलिए नहीं होता कि वे धर्म को नहीं पकड़ते, ऊपर की बात पकड़ते हैं। इन बातों से धर्म जीवन में तीन काल में भी नहीं आएगा। कर्म के क्षेत्र में पक्षपात नहीं है। भगवान महावीर ने बताया है—जो करेगा सो भरेगा। इसलिए धर्म के द्वारा अपने को उठाएं। दृष्टि का परिमार्जन करें धर्म के विषय में दृष्टि समीचीन करें। इसके लिए स्वाध्याय आवश्यक है। जैनों के हजारों-हजारों घर हैं, परन्तु कहीं भी स्वाध्याय-मण्डल या अध्ययन-कक्ष नहीं है। कम-से-कम दस प्रतिशत लोग तो जैन धर्म के जानकार होने ही चाहिए। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो सार्वजनिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभाओं में जैन धर्म का प्रतिनिधित्व कर सके। क्या चार-पांच हजार लोगों में दो-चार भी तैयार नहीं होंगे जो जैन दर्शन के पूरे अधिकारी हों? यदि आप से नहीं होता है तो हमें सौंप दें, हम तैयार करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्दृष्टि (१)

'कुण्ठापि यदि सोत्कंठा, त्वद्गुणग्रहणं प्रति।
ममैषा भारती तर्हि, स्वस्त्येतस्य किमन्यया ॥'

भगवन्! मेरी वाणी आपकी स्तुति करने के लिए उत्कंठित है। चाहे शक्ति कम हो, लेकिन लगाव है। वह मेरी वाणी भारती है और उसके लिए मैं मंगल कामना करता हूं। वह वाणी मुझे नहीं चाहिए, जिसमें आपकी स्तुति न हो।

वाणी की सार्थकता तभी है जब उसका आराध्य की स्तुति में उपयोग हो। अन्यथा वह दिनभर चलती रहती है। जीवन की हर प्रवृत्ति की सार्थकता तभी है जब उसका उदात्त उपयोग हो। आचार्य ने यही भावना व्यक्त की है कि आपकी स्तुति में लगने से मेरी वाणी सार्थक है।

जीवन की सार्थकता के लिए हम सोचते हैं। हर व्यक्ति चाहता है, उसे सफलता मिले। मिलना और न मिलना दृष्टिकोण पर आधारित है।

रोगी रोग मिटाना चाहता है। रोग मिटना न मिटना उपचार की प्रक्रिया पर आधारित है। मन की अशान्ति कोई नहीं चाहता। शान्ति का मिलना उसके उपाय की अनुकूलता पर अवलंबित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक् दर्शन हमारी सफलता का सबसे बड़ा आधार है। जिसे सम्यक् दर्शन प्राप्त नहीं होता, वह ठीक देख नहीं सकता। जिसे सम्यक् दर्शन प्राप्त नहीं होता, वह ठीक जान नहीं सकता। जिसे सम्यक् दर्शन प्राप्त नहीं होता, वह ठीक चल नहीं सकता। हमारा ठीक देखना, ठीक जानना और ठीक चलना सम्यक् दर्शन पर आधारित है। आंख से दीखना बन्द हो जाए तो पैर भी ठीक ढंग से नहीं रखे जाते। आंख जीवन की हर प्रवृत्ति का मुख्य अंग है। सम्यक् दर्शन के बिना धर्म की प्रवृत्ति ठीक नहीं होती। धर्म के क्षेत्र में सबसे पहले प्रवेश करते ही सम्यक् दर्शन को प्राप्त करने का प्रयत्न करें। जब तक बच्चा दस वर्ष का होता है, उसमें धर्मानुराग कहा जा सकता है। सोलह वर्ष के बाद लड़के अथवा लड़कियों के लिए क्रम होना चाहिए। गुरु-धारणा कराई जाती थी, वह अच्छा क्रम था। वैदिक लोग यज्ञोपवीत देते हैं। ब्राह्मण को द्विज कहा जाता है। पहला जन्म होता है जब वह दुनिया में आता है। दूसरा जन्म यज्ञोपवीत के समय होता है। मुनि भी द्विज होता है। उसका दूसरा जन्म दीक्षा के समय होता है। श्रावक द्विज होता है। उसका दूसरा जन्म सम्यक् दर्शन स्वीकार के समय होता है। सामूहिक रूप से ५०० व्यक्ति खड़े होकर जैन श्रावक की दीक्षा स्वीकार करें तो उससे एक वातावरण बनता है। समझ-बूझकर स्वीकार करने से फिर वह परम्परागत धर्म नहीं रहता। उधार में खतरा होता है और वह दुःखदाई भी होता है।

पन्द्रह-सोलह वर्ष तक बच्चों को धर्मानुरागी या सुलभबोधि बनाना चाहिए। उसके बाद उसे समझा-बुझाकर सम्यक् दर्शन कराना चाहिए। उसके दो-तीन वर्ष के बाद जब परिपक्व हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाए तब व्रती बनाना चाहिए। आगे चलकर एक अवस्था आने पर यानी साठ वर्ष के बाद घर के सब धन्धों को छोड़ पडिमाधारी या मुमुक्षु बनाना चाहिए। इस प्रकार इस क्रम में चार कक्षाएं हो जाती हैं—सुलभबोधि, सम्यक् दर्शन, व्रती, मुमुक्षु।

मुमुक्षु

बहुत वर्षों से कल्पना चल रही थी कि साधु और श्रावक के बीच की एक तीसरी श्रेणी होनी चाहिए। साधुओं की कुछ अपनी सीमा होती है। गृहस्थ अपने गार्हस्थ्य में व्यक्त रहता है। उनकी भी अपनी समस्या है क्योंकि पीछे परिवार चलता है। परम्परा के बिना न साधु होते हैं और न श्रावक होते हैं। आज जैन-धर्म चलता है, उसके पीछे परम्परा का बहुत बड़ा हाथ है। भगवान महावीर के समकालीन पकुधकात्यायन, गोशालक, अजितकेश-कंबल आदि का नाम नहीं चलता, क्योंकि परम्परा नहीं चली। भगवान का तीर्थ आज भी चल रहा है। परम्परा का महत्त्व है और वह चलनी चाहिए।

थावच्चापुत्र की दीक्षा का प्रसंग आया। श्रीकृष्ण ने अधिकारी से कहकर घोषणा कराई कि कोई भी दीक्षा लेना चाहे, वह ले सकता है। पीछे परिवार की चिन्ता न करे। सारी जिम्मेवारी मैं अपने पर लेता हूं। दीक्षा की दलाली की। यह धर्म-प्रेरणा थी। संघ को समृद्ध करने के लिए श्रीकृष्ण ने जो किया, उससे इतना पुण्य हुआ कि वे तीर्थंकर होंगे। क्या आज कोई व्यक्ति ऐसा है जो धर्म की प्रेरणा देता हो? किसी को धर्म का एक शब्द समझाना भी धर्म-प्रेरणा है। सुलभबोधि को सम्यक्त्वी, सम्यक्त्वी को व्रती और व्रती को महाव्रती बनने की प्रेरणा दें। हमारे सामने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कठिनाई यह है कि प्रेरणा देने वाले लोग नहीं हैं। गृहस्थ उलझे बैठे हैं, साधुओं की अपनी सीमा है। तब तीसरी श्रेणी की कल्पना जगी, जिसका सेंधिया (बंगाल) से चिन्तन चल रहा है। इस बार काफी चिन्तन चला और इस निश्चय पर पहुंचे कि महावीर की २५वीं शताब्दी आ रही है। देश और विदेशों में जैन लोग इसको मनाएंगे। भारत सरकार भी इसको मनाने की सोच रही है। उस अवसर पर २५०० मुमुक्षुओं की दीक्षा हो, ऐसा निश्चय किया गया है। मुमुक्षु आधुनिक युग का साधु होगा।

संयम की दृष्टि से मुमुक्षु का जीवन साधु जैसा होगा। सत्य, अचौर्य और ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करेगा। परिवार से सम्बन्धित नहीं होगा। पद-यात्रा अनिवार्य नहीं होगी, लोच भी आवश्यक नहीं होगा। अपना परिग्रह नहीं रख सकेगा। उसकी निश्चित चर्या और वेशभूषा होगी। योग व अध्यात्म का प्रशिक्षण वह स्वयं लेगा और दूसरों को देगा। योग्यता कम-से-कम मैट्रिक होनी चाहिए। आगे का अध्ययन संस्था के माध्यम से हो सकेगा। मुमुक्षु की अवधि कम-से-कम एक वर्ष, अधिक-से-अधिक जीवनभर और बीच का काल चाहे जितना रहे। बौद्धों में एक परिवार में एक व्यक्ति को भिक्षु बनना होता है, यही कारण है कि बर्मा, लंका जैसे छोटे देशों में लाखों भिक्षु मिलते हैं। एक-दो वर्ष के भिक्षु-काल में साधना भी हो जाती है और अध्ययन भी हो जाता है। मुमुक्षु के लिए ऐसे लोग नहीं होने चाहिए जो सेवा ले ही लें। पढ़े-लिखे भी चाहिए और काम करने वाले भी। विद्यार्थी जीवन के बाद यदि वे एक वर्ष तक ट्रेनिंग लें तो उनका जीवन और अधिक सफल हो सकता है।[1]

पेरिस में विश्व धर्म सम्मेलन हुआ। गुरुदेव के पास एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्र आया—आप अपने प्रतिनिधि भेजें। ऐसा योग्य श्रावक नहीं है जो वहां जाकर जैन धर्म की छाप डाल सके। वह बहुश्रुत और चरित्रवान् होना चाहिए। ज्ञान हो और चरित्र न हो तो प्रभाव नहीं पड़ता। कोरा चरित्र हो, ज्ञान न हो तो सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं हो सकता। दोनों प्रकार का व्यक्तित्व चाहिए। अनेक निमंत्रण आते हैं पर इतने बड़े समाज में एक-दो व्यक्ति भी ऐसे नहीं हैं जो उपयुक्त प्रतिनिधित्व कर सकें।

कुछ लोगों में नई बात सोचने का दिमाग नहीं है। पुरानेपन ने जकड़न दी है। भींत सहारे के लिए है, पर भींत शरीर से चिपक जाए तो? पुरानेपन में दृष्टि जकड़ जाए तो वर्तमान और भविष्य को देख ही नहीं सकता, विकास कुण्ठित हो जाता है। आचार्यों ने अपनी अनुभूति से कहा। क्या आज हमारा चिन्तन व देखने की शक्ति समाप्त हो गयी है? आज ज्ञान के साधन बढ़े हैं, सामग्री बढ़ी है। पुरानी विरासत तो हमें मिली ही है, और आगे विकास करना चाहिए। एक आचार्य ने जो किया, दूसरा, तीसरा, चौथा उसे और आगे बढ़ाए, बढ़ाते-बढ़ाते केवलज्ञान तक पहुंच जाए।

भिक्षु स्वामी की कठिनाई थी कि उन्हें कई वर्षों तक भगवती सूत्र पढ़ने को नहीं मिला। साधन-सामग्री उपलब्ध नहीं थी। जयाचार्य को भाष्य, चूर्णि और टीकाएं मिलीं काम करने के

---

१. सन् १९७१ में मुनि नथमल (युवाचार्य महाप्रज्ञ) ने ये विचार अभिव्यक्त किए थे। इन विचारों की क्रियान्विति सन् १९८० में 'समणी' दीक्षा से हुई। वर्तमान में इस श्रेणी में अठासी समणियां हैं छत्तीस समणियां समणी श्रेणी से साध्वियां हो गई हैं। आज तक १२६ समणियां दीक्षित हो गई हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए। साध्वियां भी मिल गयीं। इसलिए उन्होंने और विकास किया। गुरुदेव को उनसे भी अधिक साधन-सामग्री मिल गयी। उन्होंने और अधिक विकास किया है। अभी एक गोष्ठी में मैंने कहा—पहले हमारे सामने कठिनाई थी। एक साधु की प्रति दूसरे को पढ़ने के लिए नहीं मिलती थी। वह एक व्यक्तिगत सम्पत्ति थी। आज परिवर्तन हो गया है। साधनों की सुलभता है। जयाचार्य का युग कठिनाई का था। जयाचार्य के सामने आज जैसी सामग्री सुलभ होती तो वे इतना कार्य कर जाते कि एक प्रकार से विस्फोट-सा हो जाता। फिर भी जयाचार्य ने बहुत किया। यदि वे नहीं करते तो समाज और रूढ़िगत हो जाता और कूपमेंढक की गति हम लोगों की हो जाती।

जयाचार्य हमारा मार्ग प्रशस्त कर गए। हमें वर्तमान की अपेक्षाओं को वर्तमान के सन्दर्भ में ही समझना है और उसे पूरा करना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्दृष्टि (२)

'निशिदीपोऽम्बुधौ द्वीपं, मरौ शाखी हिमे शिखी।
कलौदुरापः प्राप्तोऽयं, त्वत्पादाब्जरजः कणः ॥'

भगवन्! कलिकाल में जो आपकी चरण-रज प्राप्त हुई है उसका हमारे लिए उपयोग है। आदमी अन्धकार में भटक रहा हो, उसे दीप मिल जाए, समुद्र में जाते हुए की नौका डूब रही है, अकस्मात् द्वीप आ जाए; मरुभूमि में जेठ मास की धूप में चल रही हो, अकस्मात् वृक्ष दीख जाए, हिमालय के पास ठंडक से ठिठुर रहा हो, उसे अग्नि मिल जाए, तो कितना आनन्द होता है! निशा में दीप, समुद्र में द्वीप, मरुस्थल में वृक्ष, हिमालय में अग्नि के समान मेरे लिए आपके चरणों की रज है।

आचार्य ने अपने हृदय की लहर भगवान के सामने व्यक्त की है। आचार्य की दृष्टि कितनी निर्मल है। जिसकी दृष्टि निर्मल नहीं होती वह मूल्य नहीं आंक सकता।

दृष्टि की निर्मलता

'नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहए।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ ॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति ज्ञान से जानता है, दर्शन से श्रद्धा, चरित्र से निग्रह और तपस्या से कर्मों का नाश करता है।

गंदा पानी कोई नहीं पीता। गंदा शरीर, गंदा कपड़ा, गंदा मकान और गन्दी जबान कोई पसन्द नहीं करता। हर आदमी स्वच्छता व निर्मलता चाहता है। फिर क्यों नहीं हम दृष्टि को निर्मल बनाएं?

मिथ्यादृष्टि होना हर किसी को बुरा लगता है। इसका अर्थ है कि हर आदमी दृष्टि की निर्मलता चाहता है।

शिष्य ने भगवान से पूछा—'यह सम्यक्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि, इसको कैसे जानें? क्या दोनों का कोई चिह्न है?' चिह्न पहचान के लिए होता है। पगड़ी से मारवाड़ी की पहचान होती है। विभिन्न सम्प्रदायों के लोग भिन्न-भिन्न तिलकों से पहचाने जाते हैं।

भगवान ने शिष्य के उत्तर में सम्यक् दर्शन के ५ लक्षण बताये हैं—

१. श्रम—शान्ति
२. संवेग—मुमुक्षा
३. निर्वेद—अनासक्ति
४. अनुकम्पा—दया
५. आस्तिक्य—सत्य के प्रति गहरी निष्ठा।

जिसमें ये पांच लक्षण मिलें वे सम्यक्दृष्टि, जिनमें न मिलें वे मिथ्यादृष्टि।

जो अमिट रोष करता है, जिसके स्वभाव में निरन्तर चिड़चिड़ापन हो, तो समझना चाहिए उसे सम्यक् दर्शन का स्पर्श नहीं हुआ है। एक बार गुस्सा आने से गांठ इतनी घुल जाती है कि फिर वह खुलती नहीं, टूट जाती है। किसी से असद्व्यवहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो जाए तो उसे पाक्षिक प्रतिक्रमण कर क्षमा-याचना करनी चाहिए। उस दिन न हो तो चातुर्मासिक पाक्षिक के दिन कर ले। उस दिन भी न हो तो संवत्सरी के दिन तो अवश्य ही कर ले। उस दिन न करने से न साधुपन रहता है, न श्रावकपन और न सम्यक्दृष्टि ही। एक साधु का दूसरे साधु के साथ विवाद हो जाने पर क्षमायाचना न करे तो वह भोजन नहीं कर सकता। उसे निर्मल भाव से क्षमायाचना करनी होती है। जो संवत्सरी के अवसर पर भी क्षमायाचना न करे वह भला सम्यक्दृष्टि कैसे रह सकता है?

मन तीव्र होने पर भी सम्यक्दृष्टि नहीं रहती। सम्यक्दृष्टि वह होता है जिसका मन शांत हो, जो विनम्र हो। विनम्रता धर्म का बड़ा गुण है।

जर्मन के महाकवि गेटे पार्क में घूम रहे थे। सामने से दूसरा आदमी आ गया। गेटे ने कहा—'देखकर चलो, सामने दूसरा आदमी है।' उत्तर मिला—'मैं किसी दूसरे के लिए रास्ता छोड़ना नहीं जानता।' गेटे—'मैं मूर्खों के लिए रास्ता छोड़ना जानता हूं।'

यह अकड़ की बात क्यों चलती है? इसलिए कि कई लोग विनम्र होने का मूल्य नहीं समझते। विचारशील बुद्धि से काम लेता है। वह शालीन होता है। कड़ाई से काम लेने की पद्धति राठोरी है। इस वृत्ति ने ही राजस्थान का विनाश किया। यदि राजस्थान में नीतिज्ञता और विनम्रता होती तो मेवाड़ मुसलमानों से पराजित नहीं होता। वास्तव में जो धार्मिक है, उसमें विनम्रता होनी चाहिए।

जिसमें ऋजुता नहीं वह सम्यक्दृष्टि नहीं हो सकता। आदमी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में ऋजुता होनी चाहिए। जिसमें सरलता नहीं होती उसका जगत् में विश्वास नहीं होता।

समाज का व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखना चाहता है। शक्तिहीन व्यक्ति अच्छा जीवन नहीं जी सकता। सम्यक्दृष्टि तीव्र लोभी नहीं होता। करोड़ रुपये होने से तीव्र लोभ होता है और पचास हजार होने से तीव्र लोभ नहीं होता—यह नहीं है। तंदुलमच्छ छोटा-सा जीव है। वह मगरमच्छ की आंख की भौंहों में बैठा रहता है। बड़ी-बड़ी मछलियां मच्छ के मुंह में आती रहती हैं। वह सोचता रहता है—यह कितना मूर्ख है, खाता नहीं। मैं होता तो सबको खा जाता। वह खा नहीं सकता, केवल आसक्ति के कारण सातवें नरक में चला जाता है।

भरत चक्रवर्ती ने छह खण्ड पर राज्य किया। उसने साठ हजार वर्षों में छह खण्डों को जीता था। उसका राज्य कितना विशाल था? भगवान की सभा में एक व्यक्ति ने प्रश्न किया—'आपकी सभा में क्या कोई मोक्षगामी है?' हां, भरत है।' इतनी लड़ाई लड़ने वाला, इतना समारंभ करने वाला यदि मोक्ष जाएगा तो नरक कौन जाएगा?' वही भरत स्नान-गृह में है, मुद्रिका को कभी खोल रहा है, कभी पहन रहा है। ऐसे खोलते और पहनते केवलज्ञान हो गया। फिर हम क्यों इतनी तपस्या करें, क्यों सामायिक करें, क्यों साधना करें, क्यों नहीं अंगूठी पहनते और उतारते रहें? आप इस प्रकार की बात को पकड़ेंगे। आप याद रखिए, ऊपर की क्रियाओं से कुछ नहीं होगा जब तक कि अन्तर की गांठ नहीं खोलेंगे। बाह्य दवा से रोग नहीं मिटेगा जब तक पेट की क्रिया ठीक नहीं होगी। हो सकता है, रोग एक बार दब जाए। लेकिन वह फिर उभर आएगा। चाहे कोई साधु हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या श्रावक, जिसने अन्तर की गांठ नहीं खोली है, उसे सिद्धि नहीं मिल सकती। सम्यक्त्व के बिना छह-छह मास की तपस्या भी की, आतापना भी ली, परन्तु सिद्धि नहीं मिली। मोक्ष से दूरी और बढ़ गयी। इतनी कठोर साधना, इतना कठोर आचरण भी किया, फिर भी मुक्ति नहीं मिली। क्या कारण है? कारण स्पष्ट है--चाबी ठीक से घूमी नहीं, इसलिए ताला नहीं खुला। जो चाबी को ठीक से घुमाना नहीं जानते, वे उसे खोल नहीं सकते। अन्तर की गांठ खुले, ग्रंथि-भेद किए बिना बाह्य आकार में साधु बन सकता है, श्रावक बन सकता है, धार्मिक बन सकता है, परन्तु उपब्धि न तो साधुत्व की होती है, न श्रावकत्व की होती है। जिसकी भीतर की गांठ खुल जाती है, वह बहुत ही शांत, नम्र, ऋजु और निर्लोभ हो जाता है।

हमारी दृष्टि ठीक होनी चाहिए। जिसमें शम हो, मुमुक्षा का भाव हो, अनासक्ति का भाव हो, वह सम्यक्दृष्टि होता है। जिसमें ये नहीं, वह सम्यक्दृष्टि नहीं होता। अपने को अपने से तोलें कि मैं कहीं सम्यक्दृष्टि न होकर भी सम्यक्दृष्टि का दावा तो नहीं कर रहा हूं? अपने गज से अपने को नापें कि मेरे मन में शान्ति है या नहीं? सम्यक्दृष्टि हूं या नहीं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्दृष्टि (३)

'तव चेतसि वर्तेहमिति वार्त्तापि दुर्लभा।
मच्चित्ते वर्तसे चेत् त्वमलमन्येन केनचित् ॥'

भगवान के प्रति एक भक्त की भावना है कि मैं तुम्हारे चित्त में रहूं, यह मेरे लिए कठिन है। हो जाए तो इससे बढ़कर मेरा सौभाग्य नहीं है। पर असम्भव है, क्योंकि मेरे जैसे तुम्हारे कितने ही हैं। लेकिन तुम मेरे चित्त में बने रहो।

भगवान का चित्त में बने रहने का अर्थ है--भाग्य का उदय, आत्मा का उदय। जिसके मन में निरंतर भगवान की स्मृति रहे, उससे बढ़कर भाग्यशाली कौन होगा! २४ घण्टों में कितने क्षण आत्मा की स्मृति रहती है? जो व्यक्ति परमात्मा या आत्मा की स्मृति में रहता है, वह सहज योगी, तपस्वी व आध्यात्मिक बन जाता है।

सवेग का अर्थ है--भगवान के धर्म की स्मृति। मुमुक्षा का अर्थ है--मुक्त होने की इच्छा। मुमुक्षा और भगवान की स्मृति एक ही है। बन्धनों का नाम संसार है। बन्धन अपने स्वभाव से या अपने मन से बनाए हुए होते हैं। रेशम के कीड़े को कौन बांधता है? अपने आप स्वयं बंध जाता है। मकड़ी अपने जाले में स्वयं फंस जाती है। क्या आदमी अपने लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्धन नहीं बनाता?

हर व्यक्ति स्वतंत्र रहना चाहता है। दूसरे की बात मानना नहीं चाहता। मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी है कि वह परतंत्रता को स्वीकार नहीं करता। आत्मा पर शरीर का बन्धन है। इसलिए वह छटपटाती है और स्वतंत्र होना चाहती है। स्वतंत्रता आत्मा की सहज मांग है। सुआ भी पिंजड़े में रहना नहीं चाहता। हाथी भी मुक्त-विहार चाहता है। यह दूसरी बात है, हाथी जंगल में बांध दिए जाते हैं। आदमी भी बन्धन नहीं चाहता है।

बन्धन दो प्रकार का होता है—आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर बन्धन १४ प्रकार का होता है और बाह्य बन्धन ९ प्रकार का। इनके द्वारा आदमी अपने आपको बांध लेता है। जहां ममत्व या अपनत्व होता है, वहां बन्धन हो जाता है। स्नान करने के लिए एक व्यक्ति तालाब में घुसता है। हजारों मन पानी ऊपर छा जाता है, पर उसे भार या बन्धन नहीं लगता। वही व्यक्ति जब पानी से भरा एक घड़ा कंधे पर रखकर चलता है तब भार लगता है, क्योंकि पानी को सीमा में बांध लिया।

अन्तर से आत्मा मुक्त होने के लिए छटपटाती है। वह मुक्त होना चाहती है, परिग्रह से, पारिवारिक सम्बन्धों से। इस शरीर से भी मुक्त होना चाहती है। जिसमें यह भावना जाग जाती है, समझना चाहिए उसकी दृष्टि सम्यक् हो गयी।

अनाशक्ति

भगवान महावीर ने कहा है—इन्द्रियों के विषय क्षणमात्र सुख देते हैं, उसका परिणाम दुःखकर और लम्बा होता है। एक घटना तत्काल घट जाती है, परन्तु उसका परिणाम दीर्घकाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक भोगना पड़ता है। किसी व्यक्ति ने कोई वस्तु खाई। उसका स्वाद जीभ पर आधा या एक मिनट तक रहता है। किसी का स्वाद चार-पांच मिनट भी टिक जाता है, परन्तु उसी वस्तु का परिणाम वर्षों तक भोगना पड़ सकता है। परिणाम को जानते हैं, फिर ऐसा क्यों करते हैं? जानते हुए भी मोहवश ऐसा कर लेते हैं। महाभारत में कहा है--धर्म को जानते हैं, फिर भी उसमें प्रवृत्ति नहीं होती। अधर्म को जानते हैं, लेकिन वह छोड़ा नहीं जाता।

कथाभट्ट का पुत्र अपने पिता के पास आया। अपनी समस्या सामने रखते हुए बोला--अभी-अभी जजमान के घर भोजन करके आया हूं। गले तक छक गया हूं। पेट पर अफारा आ गया है। पेट तन रहा है। इसी क्षण दूसरे का निमंत्रण और आ गया है। अब क्या करूं? पिता ने पुत्र को सलाह दी--

'परान्नं प्राप्य दुर्बुद्धे! मा प्राणेषु दयां कुरु।
परान्नं दुर्लभं लोके, प्राणाः जन्मनि जन्मनि ॥'

--मिठाई का निमंत्रण यदि आ गया है तो प्राणों पर दया मत कर। मिठाई दुर्लभ होती है, प्राण तो अगले जन्म में तैयार मिलेंगे।

अधिक खाने के दुष्परिणाम को भोगता हुआ भी व्यक्ति मोहवश मनोज्ञ पदार्थ नहीं छोड़ सकता। लोग विषय-भोग के परिणामों को जानते हुए भी अपनी शक्ति और वीर्य की सुरक्षा नहीं कर पाते। यूनानी दार्शनिक सुकरात से किसी ने पूछा--'पुरुष को अपने जीवन में संभोग कितनी बार करना चाहिए?' सुकरात ने जवाब दिया--'जीवन में एक बार। इतना सम्भव न हो तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष में एक बार। यह संभव न हो तो महीने में एक बार। यह भी संभव न हो तो दिन में एक बार। यह भी संभव न हो तो सिर पर कफन रख लो, फिर चाहे कितनी बार करो।'

स्नायुओं की दुर्बलता, मन की दुर्बलता और चिन्तन-शक्ति की दुर्बलता होती है वीर्य की कमी के कारण। इस बात को जानते हुए भी कितने लोग अपनी शक्ति की सुरक्षा कर पाते हैं? जानने और करने की खाई को पाटने वाला भगवान हो जाता है। कहना सरल है, पर करना कठिन है। कहने की शक्ति वाणी है और समझने का साधन वाणी है, यह तो सरलता से हो जाता है। परन्तु उसे करने में कठिनाई होती है। मैं देखता हूं—दहेज का प्रश्न समाज में बड़ा प्रश्न है। हजारों व्यक्ति कहते हैं और अनुभव भी करते हैं। जब करने का समय आता है तब कहते हैं—एक काम सामने है। इसको निपटा लें फिर सोचेंगे। जहां अपने का प्रश्न आता है, वहां गड़बड़ी हो जाती है। संस्कृत में दो पद होते हैं—परस्मैपद और आत्मनेपद। जहां आत्मनेपद आता है, वह अपने लिए होता है, उसमें रूप-परिवर्तन हो जाता है। दूसरों को कहने में सुविधा है। जहां अपने लिए प्रश्न आता है, वहां कठिनाई हो जाती है। कहने वालों को आत्मालोचन करना चाहिए। स्थानांग सूत्र में छद्मस्थ के सात लक्षण और वीतराग के भी सात लक्षण बताए हैं। सात लक्षणों से छद्मस्त माना जाता है। उनमें एक लक्षण है—वह कहता कुछ और है और करता कुछ है। उपदेश देने वाले भी इस भूमिका को पार कर गए—ऐसी बात नहीं है।

एक भाई ने मुझसे कहा—'अमुक साधु ने क्रोध किया, अमुक साधु ने कठोर वचन कह दिए। अमुक साधु ने अमुक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काम कर लिया, इनको देख धर्म से मेरी आस्था उतर गयी।' मैंने उत्तर दिया—'यह तुम्हारी दुर्बलता है। गलती करे कोई और आस्था टूटे तुम्हारी! कितनी कमजोर आस्था है तुम्हारी! एक व्यक्ति को वमन करते देख वही व्यक्ति वमन करता है जिसकी पाचन शक्ति कमजोर हो। क्या तुमने धर्म उनके आधार पर स्वीकार किया है? वे धर्म में रहें तो तुम्हारी आस्था टिकी रहे। इसका अर्थ हुआ, तुम्हारा भाग्य उनके हाथों में है। जब वे चाहें जैसी चाबी घुमा दें, तुम्हें वैसे ही बनना होगा।' धर्म को आत्मा से समझकर स्वीकार किया है। हमने ऐसा क्यों मान लिया कि वे साधु नहीं, सिद्ध हैं। हमें यह मानकर चलना चाहिए कि साधु साधना की भूमिका में चलता है, सिद्ध नहीं है। वह साधना के मार्ग पर चलता है, लड़खड़ा भी जाता है और पीछे भी रह जाता है, परन्तु उसका रास्ता ठीक है।

विवेकानन्द ने लिखा है कि जब मैं ध्यान की साधना कर रहा था, उस समय वासना उभरने लगी। ध्यान की साधना में ज्यों-ज्यों साधक आगे बढ़ता है, पुराने संस्कारों की जड़ उखड़ने लगती है, भयंकर वासना जाग जाती है। उस समय अपने को संभालकर रखना बहुत कठिन होता है। यदि गुरु संभालने वाला न हो तो कठिनाई हो जाती है।

गांव के बाहर अकूरड़ी होती है। वर्षों से उस पर आते-जाते हैं, लेकिन दुर्गन्ध नहीं आती। यदि उसको साफ करेंगे तो बदबू फूटने लगेगी। जमने के बाद दुर्गन्ध भी जम जाती है। पेट में भी विजातीय तत्त्व जमा पड़ा है। क्या कोई कह सकता है, मेरा पेट साफ है, विजातीत तत्त्व नहीं है? अज्ञान के कारण कोई कह सकता है। समझदार कभी नहीं कह सकता। हमने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो साधुओं की प्राकृतिक चिकित्सा देखी। पांच-सात दिनों तक एनिमा दिया। विशेष कुछ नहीं निकला। कई दिनों बाद थोड़ा मल आने लगा, फिर तो और अधिक आता रहा। महीने के बाद तो आश्चर्य होने लगा कि इतना मल कहां से आता रहा, जबकि भोजन और दूध सब बन्द था। केवल थोड़ा-सा रस दिया जाता था। इस पेट में विजातीतय तत्त्व इतना जाम पड़ा है कि हम कल्पना नहीं कर सकते। वैसे ही, हमारे मन में संस्कार जमे पड़े हैं। पर क्या यह बुराई है? नहीं, स्वाभाविक प्रक्रिया है। जमा हुआ निकलता है।

साधक को सतर्क रहना चाहिए। जब दबे संस्कार जागृत होते हैं उस समय यदि वह संभलकर नहीं चलता है तो कभी-कभी पागल भी हो जाता है।

लोग कहते हैं—जब बातें करते हैं या ताश यदि खेलते हैं तब मन स्थिर रहता है। जब ध्यान करने या मालाजाप में बैठते हैं तब मन की इतनी चंचलता होती है, जितनी पहले नहीं थी। इस अस्थिरता के कारण ध्यान या जाप को छोड़ना कायरता है। बुरे संस्कार जमे हुए हैं। वे संस्कार यदि उखड़ रहे हैं तो अच्छी ही बात है, उससे घबराओ मत। यह शुभ संकेत है।

साधु साधक है। उसे सिद्ध मत मानिए। साधु भी अपने आपको माने कि मैं साधक ही हूं। श्रावक भी उसे साधु ही समझें। दीक्षा-स्वीकार के समय यह अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का संकल्प लेता है। आप भी सामायिक में इन्हीं पांचों का संकल्प लेते हैं। दीक्षा लेने के पांच मिनट पहले गृहस्थ था। वही संकल्प लेते हुए पांच मिनट बाद साधु बन जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जादू का-सा खेल है। याद रखें, वह संकल्प की अहिंसा है, सिद्ध-अहिंसा नहीं। संकल्प का सत्य है, सिद्ध-सत्य नहीं। संकल्प का अचौर्य है, सिद्ध-अचौर्य नहीं। संकल्प का ब्रह्मचर्य है, सिद्ध-ब्रह्मचर्य नहीं। संकल्प का अपरिग्रह है, सिद्ध-अपरिग्रह नहीं। संकल्प और सिद्ध में दूरी होती है। साधु बनने वाले ने उसको स्वीकार किया है, परन्तु लक्ष्य तक पहुंचा नहीं है। सिद्ध-अहिंसा वीतराग की अहिंसा होती है और संकल्प-अहिंसा प्रारम्भिक-कक्षा की अहिंसा होती है।

वीतराग कभी झूठ नहीं बोलता, साधक बोल भी लेता है। वीतराग कभी हिंसा नहीं करता, साधक कर भी लेता है। अवीतराग का चरित्र स्वीकार किया जाता है और वीतराग तक पहुंचा जाता है। अवीतराग से गलती हो भी जाती है और कर भी लेता है। लक्ष्य साधना की ओर है, तब ठीक है। दिशा बदल जाए तो रास्ता गलत हो जाता है। दिशा अभिमुख होनी चाहिए, गति में तीव्रता-मन्दता आती रहती है।

एक साधक दूज के चन्द्रमा के समान होता है और एक पूर्णिमा के चन्द्र के समान। दोनों का अन्तर स्पष्ट होने से उलझन नहीं बढ़ती। दूसरों के आधार पर आस्था छोड़ने की बात उचित नहीं है। हम दूसरों को धर्म कराना चाहते हैं। एक गांव में सतियों का चातुर्मास था। उपवास की बारी के लिए एक भाई को याद दिलाया कि कल तुम्हारी बारी है। उसने उत्तर दिया—'ठीक है, उपवास हो जाएगा।' उपवास के बाद पूछा—'क्यों, उपवास करा लिया?' 'हां, करा लिया।' 'किससे?' 'घर में भैंस है, उससे करा लिया।'

मनोवृत्ति ऐसी बन गयी कि स्वयं न करके दूसरों से करवाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहते हैं। दूसरों के आधार पर चलने की बात समझ में नहीं आती। बच्चा मां की उंगली को पकड़कर चले तो समझ में आने जैसी बात है। पर वह यदि दस-बीस वर्ष तक उंगली पकड़कर चले तो अच्छा नहीं लगता। श्रावक भी साधु के आधार से सीखते हैं। जब सीख लिया तो उसका आचरण होना चाहिए। सारा जीवन सीखने ही सीखने में बिता देंगे तो आचरण कब करेंगे? भगवान की वाणी है—प्रत्येक व्यक्ति का पुण्य-पाप अपना-अपना होता है।

जहां मनुष्य दूसरों के छिद्र देखने में समय बिता देता है, वहां स्वयं के धर्म करने की बात गौण हो जाती है।

अमुक साधु क्या करता है? वह क्या लाता है, क्या खाता है? इस छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति से मनुष्य अपना खोता ही है, पाता कुछ नहीं। श्रावक को माता-पिता की उपमा दी गयी है तो सौत की भी उपमा दी है।

गुरुदेव परिवर्तन करते हैं। लोग प्रश्न पूछते हैं। जिज्ञासा तक तो ठीक है, लेकिन सारा भार अपने पर क्यों ओढ़ लेते हैं, समझ में नहीं आता।

एक व्यक्ति मेरे पास आया और प्रश्न पूछने लगा। मैंने उसको समझाया। वह कहने लगा—'सूत्रों की बात का मुझे क्या ज्ञान?' मैंने कहा—'या तो तुम सूत्रों का अध्ययन कर बात करो या फिर मैं कहता हूं, उस पर विश्वास करो।'

सूत्रों में कई स्थान पर अपवाद बताया है। उसकी कुंजी गीतार्थ के हाथ में होती है। गीतार्थ जैसा आदेश दे, साधुओं को वैसा ही करना होता है। श्रावक का अधिकार पूछकर जानकारी करने तक है, लेकिन उसका भार सिर पर ढोने के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए नहीं है।

व्यक्ति धर्म स्वयं करे और अपनी अनुभूति के आधार पर करे। दृष्टि को निर्मल रखे। अनासक्त बने। जिसमें यह भावना जाग जाती है, वह सम्यक्दृष्टि हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्दृष्टि (४)

'विमतिः सम्मतिर्वापि, चार्वाकस्य न मृग्यते।
परलोकात्मवस्तुनि, यस्य मुह्यति शेमुषी ॥'

भगवन्! मैं सबका मत जानना चाहता हूं, किन्तु चार्वाक का नहीं, जो नास्तिक है। न तो मैं उसका विरोध करना चाहता हूं और न सलाह लेना चाहता हूं। जिस व्यक्ति की परलोक, आत्मा और मोक्ष के विषय में स्पष्टता नहीं है, उसका मत लेने में कोई सार दिखाई नहीं देता। आचार्य ने अपनी आस्तिक्य-भावना स्तुति में व्यक्त की है।

सम्मति उसकी चाहिए जिसकी दृष्टि साफ हो, पारदर्शी हो। आरदर्शी सब होते हैं, लेकिन पारदर्शी सब नहीं होते। जिसकी दृष्टि पारदर्शी नहीं है, उसकी सलाह लेना आवश्यक नहीं है। हमारी दृष्टि स्पष्ट, निर्मल और पारदर्शी होनी चाहिए। स्फटिक के समान निर्मल होने से जो जैसा होता है, वह वैसा ही दिखाई देता है।

प्रश्न हो सकता है—कैसे जानें कि अमुक की दृष्टि साफ है? सम्यक्दृष्टि के तीन लक्षणों का विवेचन हो चुका है। चौथा लक्षण है—अनुकम्पा। जिसमें अनुकम्पा की दृष्टि है, समझना चाहिए कि वह सम्यक्दृष्टि है। जिसमें अनुकम्पा नहीं, उसे मिथ्यादृष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझना चाहिए।

क्रूरता और सम्यक् दर्शन एक साथ नहीं टिक सकते।

अनुकम्पा का अर्थ है—हृदय की द्रवता या हृदय की कोमलता। एक बार महात्मा गांधी से एक विदेशी ने पूछा—'आपकी दृष्टि में वह कौन-सी बात है जिसके आधार पर हिन्दुस्तान के प्रति आप आश्वस्त हैं और वह कौन-सी बात है जिससे आप निराश होंगे?' गांधी ने उत्तर दिया—'हिन्दुस्तान की आत्मा में अहिंसा का स्रोत प्रवहमान है, इससे मैं आश्वस्त हूं। आज की नई पीढ़ी में करुणा का स्रोत सूख रहा है, इससे मैं निराश हूं।'

आज हिंसा चल रही है। एक व्यक्ति दूसरे को बिना प्रयोजन मार डालता है, बिना अपराध मार देता है। आज जो हो रहा है, वह किसी से छिपा नहीं है। किन-किन को मारना है, हत्यारों के पास सूची है। मारने वाले पागल नहीं हैं, पढ़े-लिखे हैं। उद्देश्यपूर्वक मारते हैं। प्रमुख जमींदारों, पूंजीपतियों और शिक्षाशास्त्रियों को मारते हैं, जो उनके विचारों के प्रतिकूल हैं। उनकी मान्यता है—बुर्जुआ वर्ग क्रांति में सबसे अधिक बाधक है। इसको समाप्त किए बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते। सम्भवतः आप उनके चिन्तन को दोषी कहेंगे। दोष एक पक्षीय नहीं होता। उनके मन में क्रूरता क्यों हुई? यदि आपके मन में अनुकम्पा है, तो दूसरों के हृदय में क्रूरता पैदा नहीं करेगी।

श्रीमद् रायचन्द जैन धर्म के बड़े साधक व्यक्ति थे। महात्मा गांधी ने लिखा है कि मैंने किसी को गुरु तो नहीं बनाया, लेकिन मुझ पर अहिंसा का सबसे अधिक प्रभाव श्रीमद् रायचन्द का पड़ा है। वे आध्यात्मिक साधक थे। वे गृहस्थ थे। गृहस्थ जीवन में भी उनकी साधना इतनी उच्च थी कि कई साधु भी वहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक नहीं पहुंच पाते। बड़े योगी, तपस्वी साधक थे। वे जवाहरात का काम करते थे। किसी व्यक्ति के साथ सौदा किया था। भाव बढ़ गए। भाव इतने बढ़े कि बेचने वाले का दिवाला होने की स्थिति आ गई। रायचन्द ने सौदे का पत्र मांगा, पर वह कांप रहा था, देने से हिचकिचा रहा था। रायचन्द के अधिक आग्रह पर उसने पत्र दिया। रायचन्द ने यह कहते हुए पत्र को तत्काल फाड़ दिया कि रायचन्द्र दूध पी सकता है, किसी का खून नहीं पी सकता। इसका नाम है करुणा। धार्मिक होकर दूसरों को नष्ट करने की बात सोचे, क्या वह धार्मिक है? धार्मिक चींटी को चीनी डालते हैं, पर मनुष्य के साथ क्रूर व्यवहार करते नहीं सकुचाते। जहां स्वार्थ को चोट न पहुंचे, वहां तक वे अहिंसा व करुणा का आचरण करते हैं। जहां स्वार्थ टूटता है, वहां वे क्रूर बन जाते हैं।

भगवान महावीर ने स्थान-स्थान पर करुणा का उल्लेख किया है। जिसमें अहिंसा और करुणा की भावना नहीं, उसका धर्म में प्रवेश भी नहीं होता। श्रावक के व्रतों को देखिए। अपने आश्रितों का भक्त-पान विच्छेद करना एक अतिचार है।

मुनीम, नौकर या कोई आश्रित है, वह बीमार पड़ जाए तो सहानुभूति या दवा की बात तो दूर उसके साथ निर्मम व्यवहार किया जाता है। एक दिन काम न करने पर उसका वेतन काट लेते हैं। कहीं-कहीं पर मार-पीटकर उसे नौकरी से भी हटा देते हैं।

महाराष्ट्र में एक राज्याधिकारी था। उसके पास एक क्लर्क काम करता था। टेबुल पर एक तार पड़ा था। अधिकारी आया। उसकी दृष्टि तार पर पड़ी। उसे उठाया और जल्दी में पढ़ गया। उसमें लिखा था—तुम्हारी माता गुजर गई। उदास होकर बैठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया। क्लर्क ने पूछा—'आप उदास क्यों हैं?' अधिकारी बोला—'मेरी मां चल बसी, उससे नहीं मिल सका। अब अन्त्येष्टि में शामिल होना है। जल्दी यहां से जाना पड़ेगा।' क्लर्क ने तार पूछा, उसे दिया तो वह पढ़कर बोला—'श्रीमन्! आपकी माता नहीं, मेरी माता चल बसी हैं। तार आपके पते से मेरे नाम है।' अधिकारी का चेहरा बदल गया। उदासी मिट गई। क्लर्क ने छुट्टी मांगी कि मां की अन्त्येष्टि में जाना है। अधिकारी ने कहा—'दो दिन हुए अभी तो आए हो। कुछ दिन ठहरो। माता बूढ़ी थी, मर गई तो क्या हुआ।' बहुत प्रार्थना करने पर छुट्टी नहीं दी। इस क्रूरता से क्लर्क के मन में क्रूरता पैदा हुई। उसने कहा—यदि मेरे पास पिस्तौल होती तो मैं इसे वहीं मार देता।'

प्रश्न उठता है—मन में प्रतिक्रिया क्यों होती है? सब जानते हैं, सारी दुनिया साधु नहीं है। हर व्यक्ति के मन में प्रतिक्रिया होती है। पशुओं के मन में भी प्रतिक्रिया होती है। सांप और ऊंट वर्षों के बाद बदला ले लेते हैं। क्या मनुष्य में पाशविकता नहीं है? वह भरी पड़ी है। जगाने से जाग जाती है। यदि श्रीमद् रायचन्द जैसा व्यवहार हो तो कोई क्रूर नहीं हो सकता। अहिंसा और अनुकम्पा तब होती है जब क्रूरता का विसर्जन होता है।

दो सहोदर भाई भी लड़ते समय दो बाप के हो जाते हैं। एक-दूसरे के साथ निर्मम व्यवहार करते हैं। मां के पांच-सात बेटे हैं, फिर भी मां को कोई नहीं पूछता। क्या यह क्रूरता नहीं है?

एक गांव में साधु है। वह बीमार है। आगन्तुक साधु को पता हो जाए कि यहां साधु बीमार है और यदि वह सीधा चला जाए तो उसे प्रायश्चित्त आता है। इसीलिए की हमारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहानुभूति, वात्सल्य बना रहे, उपेक्षा न रहे। यह न सोचे कि जो बीमार है, वह अपना कर्म भोगेगा, हमें उससे क्या!

जैन धर्म को मानने वाले लोग जब अपने बूढ़े माता-पिता के प्रति क्रूर व्यवहार करते हैं तब लगता है उन्होंने जैन धर्म के मर्म को नहीं समझा है।

क्रूरता के पनपने के पीछे दो कारण हैं—स्वार्थ और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण। जिसके प्रति आकर्षण या प्रेम होता है, उसके प्रति दया या सज्जनता का व्यवहार करना स्वार्थ का प्रदर्शन है, करुणा नहीं। हृदय की कोमलता यह नहीं देखती कि यह अपना है या पराया है। वैसा कोमल व्यक्ति किसी के प्रति अन्याय नहीं देख सकता, विरोधी के हितों का भी शोषण नहीं कर सकता, बुरे तरीकों से धनार्जन कर दूसरों को धोखा नहीं दे सकता।

आज जैन समाज पर आरोप आता है कि वह अहिंसा को मानता है, फिर भी व्यापार में अनैतिकता करता है। देहली में एक बार गुरुदेव तुलसी को डॉ. राधाकृष्णन ने कहा था—दूसरों को अणुव्रती बनाएं या न बनाएं, पर जैन लोगों का दृष्टिकोण बदल दीजिए, वे अनैतिकता न करें। भारत में जैनों का बहुत बड़ा समाज है।

स्वार्थ विघटित होता है, फिर भी अहिंसा खंडित नहीं होती तब समझना चाहिए हमारी वृत्ति में करुणा आई है। स्वार्थ छोड़ दें, पर करुणा नहीं छोड़ें।

आदमी बुरा ही नहीं होता। हर व्यक्ति में अच्छाई और बुराई—दोनों होती हैं। अच्छे दीखने वाले व्यक्ति में भी बुराई के बीज छिपे रहते हैं। बुरे दीखने वाले में भी अच्छाई रहती है। डाकू में भी भलाई के बीज प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। अंगुलिमाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डाकू बुद्ध के पास आया और भिक्षु बन गया। वाल्मीकि भी पहले डाकू था। अर्जुनमालाकार छह आदमी और एक औरत को प्रतिदिन मारता था। वह भगवान महावीर के पास गया और साधु बन गया। उसके भीतर अच्छाई की मात्रा छिपी थी, उसको जगाई, वह साधु बन गया। आप निश्चित मानिए, जिसको खराब मानते हैं, उसमें भी बहुत अच्छाई पड़ी है। यदि हम चाहें तो एक बुरे व्यक्ति को अच्छा बना सकते हैं, यदि उसके साथ हमारा व्यवहार अच्छा हो। खराब व्यवहार होने से अच्छा आदमी भी बुरा बन जाता है। जिनको क्रूर मानते हैं, वे क्यों होते हैं क्रूर? सत्ता-सम्पन्न, धन-सम्पन्न और शिक्षा-सम्पन्न वर्ग यदि ध्यान नहीं देता है, पतित वर्ग की सद्भावना प्राप्त नहीं करता है तो वह क्रूरता को जन्म देता है।

यदि मन की क्रूरता और स्वार्थ दूर नहीं होगा तो वर्तमान की स्थिति का कोई समाधान नहीं होगा। गुरुदेव ने बंगाल की स्थिति पर चेतावनी देते हुए कहा था—श्रावक वह है जो देशकाल के आधार पर अपने में परिवर्तन कर लेता है। जो नहीं करता है, उसको कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्तिक्य

'अदृश्यो यदि दृश्यो न, भक्तेनापि मया प्रभो!
स्याद्वादस्ते कथं तर्हि, भावी मे हृदयंगमः ॥'

भगवान महावीर की स्तुति में मैंने लिखा था—आप अदृश्य हैं, ऐसा सब लोग कहते हैं। पर मैं आपका भक्त हूं। यदि आप मुझे भी दिखाई नहीं देते तो स्याद्वाद मेरी समझ में नहीं आएगा। अदृश्य भी दृश्य होता है। तब स्याद्वाद बनता है। भले ही आप दूसरों के लिए अदृश्य बनें, पर मेरे लिए दृश्य बनें, तभी मैं स्यादवाद् को समझ पाऊंगा, तभी आपका स्याद्वाद मेरे हृदयंगम होगा।

'जावंति विज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा।
लुप्पंति बहुसो मूढ़ा, संसारम्मि अणंतगे ॥१॥
समिक्ख पंडिए तम्हा, पास जाइपहे बहु।
अप्पणा सच्च मेसिज्जा, मित्तिं भूएसु कप्पए ॥२॥

इस दुनिया में जितना दुःख है, वह अज्ञानी आदमी ही उत्पन्न करता है। ज्ञानी दुःख उत्पन्न नहीं करता। अज्ञानी अपने लिए भी दुःख उत्पन्न करता है। सब दुःख का मूल अज्ञान है। यदि दुःखों को पैदा करने वाला अज्ञानी नहीं होता तो दुःख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी नहीं होते। अज्ञानी अपनी कल्पना से, मानसिक ऊहापोह से समस्या खड़ी कर लेता है और उसका भार ढोता रहता है। ज्ञानी दुःख पैदा नहीं करता।

आस्तिक्य

सम्यक् दर्शन का पांचवां लक्षण है—आस्तिक्य। अस्ति का अर्थ है 'है'। 'है' को स्वीकार करना आस्तिक्य होता है। छह बातों को जानने वाला आस्तिक होता है—

१. आत्मा है।
२. आत्मा पुनर्भवगामी है।
३. आत्मा सुख-दुःख का कर्ता है।
४. आत्मा सुख-दुःख की भोक्ता है।
५. बंध है और उसके हेतु हैं।
६. मोक्ष है और उसके हेतु हैं।

कुछ लोग आस्तिक्य का अर्थ आस्था कर देते हैं, पर वह पूर्ण नहीं है। इन छह बातों को जानना आस्तिक्य है। इसके बिना जीवन की नौका डगमगा जाती है। नौका को चलाने वाला भी चाहिए। ज्ञानी समाधान निकाल लेता है और अज्ञानी डूब जाता है।

लार्ड माउण्टबेटन नौ-सेना में भर्ती होने के लिए परीक्षा देने गए। परीक्षक ने कहा—'युवक! जब तुम जहाज को लेकर जाओगे, उस समय तूफान आ जाएगा तो क्या करोगे?' उत्तर दिया—'लंगर डाल दूंगा।' 'फिर तूफान आ जाएगा तो?' 'फिर लंगर डाल दूंगा।' फिर आएगा तो? 'फिर लंगर डाल दूंगा।' 'इतने लंगर कहां से आएंगे?' युवक ने उत्तर दिया—'जहां से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तूफान आएगा, वहीं से लंगर भी आ जाएगा।' फलित यह हुआ कि जितनी समस्या उत्पन्न होती है, उतने ही उसके समाधान होते हैं।

बुद्धिहीन श्रद्धा भी खतरनाक हो जाती है। श्रद्धा ज्ञानपूर्वक होनी चाहिए। ज्ञान के अभाव में श्रद्धा हिल जाती है। ज्ञान और श्रद्धा दोनों साथ चलनी चाहिए। कोरी श्रद्धा रहने से नए प्रश्नों में उलझ जाते हैं। ऊहापोह होने लग जाता है। इनमें उनका दोष नहीं है, क्योंकि उनके पास ज्ञान नहीं है। ज्ञान की वेदी पर श्रद्धा की मूर्ति बिठाने वाले की श्रद्धा नहीं डिगती। अज्ञान के सहारे चलने वाली श्रद्धा उतार-चढ़ाव आने पर लड़खड़ा जाती है।

अतिमुक्तक मुनि जब पानी में पात्री को तैराने लगे तो साधुओं ने देख लिया। वे भगवान के पास आए, बोले—'भंते! आपका शिष्य क्या कर रहा है? आपने कैसे साधु बना दिया?' भगवान ने उत्तर दिया—'निर्ग्रन्थो! आशातना मत करो। यह इसी जन्म में मोक्ष पाने वाला है।' आलोचना करने वाले मोक्ष में नहीं गए, और वे चले गए। प्रमादवश, अधृतिवश या छद्मस्थता के कारण कोई काम कर लेता है, उससे उसकी पवित्रता या अपवित्रता का निर्णय नहीं होता। उनका निर्णय उसके अंतरंग से होता है। कदाचित् के आधार पर कोई तोला या नापा नहीं जा सकता। साधुओं के लिए अतिमुक्तक की बात बड़ी हो गई, परन्तु भगवान के लिए वह बड़ी बात नहीं थी। भगवान् सब जानते थे। हमें जानने का प्रयत्न करना चाहिए। कई ज्ञानी होते हैं, पर श्रद्धावान् नहीं होते। कई श्रद्धावान् होते हैं, पर ज्ञानी नहीं होते। ज्ञान के आधार पर श्रद्धा खड़ी होनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रद्धा का अर्थ है—विश्वास। मैं सोचता हूं, जिसको मैं नहीं जानता, उसके प्रति विश्वास कैसे हो सकता है?

मेवाड़ का एक व्यक्ति सुजानगढ़ में आया। जिस घर में ठहरा, उन्होंने आतिथ्य-सत्कार किया। भोजन में खीर पर पिस्ता और बादाम की करतन डाली गई थी। उस भाई ने कभी देखा नहीं था, इसलिए उसने लटें (जीव) समझ चुन-चुनकर सबको निकाल दिया। बादाम की कतरन को यदि उसने लटें समझा तो उसका दोष नहीं, क्योंकि वह जानता नहीं था।

जिस विषय में आपने जाना नहीं, सुना नहीं, उस पर श्रद्धा नहीं होती। श्रद्धा है, ज्ञान के बाद होने वाली मन की धृति। बहुत-से फूल विदेशों में होते हैं। उनके बारे में आप जानते नहीं, तब उनको लेने की मन में भावना नहीं जगेगी।

नई वस्तु को देखने से मन में आशंका होती है। पहले पहल जब रेल आई थी, तब लोग अपरिचित होने के कारण आशंकित थे। कई लोगों ने तो अपने गांव के पास से होकर रेल निकालने का विरोध किया। आज वे पश्चात्ताप कर रहे हैं। ऐसा क्यों हुआ? अज्ञान के कारण हुआ।

कोई भी नई चीज आती है तो वह सहज ही स्वीकार्य नहीं होती। फिर वह चाहे अच्छी हो या बुरी, उपयोगी हो या अनुपयोगी। नई वस्तु गृहीत नहीं होती।

गुरुदेव जब दिल्ली में थे तो अणुव्रतों का विरोध चल रहा था। जैन लोग कहते थे कि गुरुदेव ने मिथ्यादृष्टि और सम्यक्दृष्टि को एक कर दिया है। अजैन लोग इसलिए विरोध करते थे कि ये अणुव्रत के सहारे सबको जैन बना लेंगे। अनुभवी पत्रकार श्री सत्यदेवजी विद्यालंकार ने गुरुदेव से कहा था—गुरुदेव!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह नई बात नहीं है। हर नई वस्तु को चार स्टेज पार करने पड़ते हैं—

१. मखौल।

२. आलोचना—इससे क्या होगा? यह काम की चीज नहीं है। बारह व्रतों से ही काम हो सकता था, फिर अणुव्रतों की आवश्यकता ही क्या थी?

३. समझना—आलोचना के बाद उपयोगिता समझ में आती है। अणुव्रतों से अनेक लोग धर्म के निकट आए हैं।

४. स्वीकार—फिर अच्छा जान उसे स्वीकार करते हैं।

हर नई वस्तु को ये चार स्टेज पार करने होते हैं।

मैं समझता हूं, ऐसा होना ही चाहिए। ज्ञान के द्वारा परीक्षा कर फिर नई वस्तु को ग्रहण करना चाहिए। रूढ़िवादिता से ग्रहण नहीं करना चाहिए। आचार्य भिक्षु ने कहा है—'बाप तलाई जाण नै, खावै गार गिंवार।'

तालाब का पानी सूख गया था। एक व्यक्ति उसकी मिट्टी को चाट रहा था। दूसरे ने देखा तो कहा—'पानी की आवश्यकता है तो पास में ही दूसरा तालाब है, वहां चले जाओ।' उसने उत्तर दिया—'यह मेरे बाप का है, इसलिए पानी तो यहीं पीऊंगा।'

ऐसा परीक्षक नहीं चाहिए, ऐसा श्रद्धालु नहीं चाहिए। सत्य को पकड़ने के लिए दिमाग को एकदम खाली करना होगा। दिमाग बच्चों की स्लेट की तरह साफ चाहिए। नई बात को लाने के लिए, उसके लिए स्थान खाली करो, तभी उसका प्रवेश होगा।

'आग्रही बत निनीषति युक्तिं, तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा।
पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशम् ॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आग्रही व्यक्ति अपनी बनी हुई धारणा को पुष्ट करने के लिए तर्क का उपयोग करता है। जो चित्र दिमाग में बसा हुआ है, उसे ही समर्थन देता है।

एक व्यक्ति घर में आया और रोने लगा। सिर पर पल्ला ले लिया। घर वालों ने पूछा—'आज क्या हो गया है? कौन-सी दुर्घटना हुई है?' वह बोला—'क्या तुम लोगों को पता नहीं है? मेरी पत्नी विधवा हो गई है।' घर वाले बोले—'तुम खड़े हो फिर वह कैसे विधवा हो गई?'

उसने कहा—'ससुराल से नाई आया है, वह कह रहा है, तुम्हारी पत्नी विधवा हो गई। क्या ससुराल का नाई झूठ बोलता है? झूठ बोलने में उसको क्या लाभ?'

हमारे जीवन की बहुत सारी स्थिति दूसरों के कहने के आधार पर चलती है। तुम सोचो, तुम्हारा विवेक क्या कहता है? तुम्हारा ज्ञान क्या कहता है? दूसरों के कहने से चलने का अर्थ हुआ, तुमने अपना अनुभव और विवेक बेच दिया है। दूसरों पर इतना निर्भर कभी नहीं रहना चाहिए।

सूत्रों में लिखा है, साधु को कान का मैल, नाक का मैल, आंख का मैल नहीं निकालना चाहिए। जुलाब नहीं लेना चाहिए, मर्दन नहीं करना चाहिए, दांत भी साफ नहीं करना चाहिए। दूसरी ओर साधुओं की क्रियाएं देखते हैं कि वे कान साफ करते हैं, दांत साफ करते हैं। आप क्या सोचेंगे? सूत्रों में कुछ कहा है और कर कुछ रहे हैं। आपकी आस्था डोल जाएगी। परन्तु जानना चाहिए कि कोई भी नियम अपेक्षा-शून्य नहीं होता। हर नियम देश, काल और भाव-सापेक्ष होता है। अपेक्षा को नहीं समझने के कारण संशय होता है। हम लोग स्याद्वादी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्तवादी हैं। एक वस्तु सत् भी है, असत् भी है, नित्य भी है, अनित्य भी है। हमें सापेक्षता को समझना चाहिए। जो सापेक्षता को नहीं जानता, वह भगवान महावीर का सिद्धान्त तीन काल में भी नहीं जान सकता।

एक भी बात नय के बिना नहीं होती। निर्जरा किसकी होती है? कर्मों की। एक नय की दृष्टि से यह उत्तर सही नहीं है। गौतम ने भगवान से पूछा—निर्जरा कर्म की होती है या अकर्म की? भगवान ने उत्तर दिया—कर्म का वेदन होता है और अकर्म की निर्जरा होती है। जब कर्म उदय में आते हैं, तब वेदन होता है। फिर वे अकर्म बन जाते हैं, तब उनकी निर्जरा होती है। निश्चय नय के अनुसार अकर्म की निर्जरा होती है तथा कर्मों का वेदन होता है। स्थूल दृष्टि से यह भी ठीक है कि कर्मों की निर्जरा होती है परन्तु निश्चय की दृष्टि से अकर्म की निर्जरा होती है।

नरक में कौन उत्पन्न होता है, मनुष्य या तिर्यंच? निश्चय की दृष्टि से नैरयिक ही नरक में उत्पन्न होता है, व्यवहार की दृष्टि से मनुष्य और तिर्यंच भी नरक में उत्पन्न होते हैं। अपेक्षा-भेद से सब सत्य हो सकते हैं।

नय सात होते हैं और अपेक्षा-भेद से सात सौ बन जाते हैं। फिर अपेक्षा बढ़ाएं तो और अधिक भेद हो जाते हैं।

'जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया।'

जितने बोलने के प्रकार हैं, उतने ही नय हैं। कोई भी बात नय के बिना नहीं होती। एक अक्षर के अनन्त पर्याय होते हैं। उनके अनन्त अर्थ होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर ने सारी उलझनों को मिटाने के लिए स्याद्वाद का मन्त्र दिया। अपेक्षा को छोड़ने से सारा श्रुत मिथ्याश्रुत हो जाता है। अपेक्षा समझने से मिथ्याश्रुत भी सम्यक्श्रुत हो जाता है। व्यवहार की अपेक्षा से हम अभवी साधु को भी साधु मानते हैं और गृहस्थ में बैठे साधु को भी असाधु मानते हैं, इसलिए वास्तविकता को समझने के लिए स्यादवाद या अपेक्षा-दृष्टि का उपयोग करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म की तीसरी कक्षा—व्रती बनना

'वीतराग! सपर्यातः, तवाज्ञापालनं परम्।
आज्ञा राद्धा विराद्धा च, शिवाय च भवाय च ॥'

वीतराग! आपकी पूजा करूं, इससे अच्छा है कि मैं आपकी आज्ञा का पालन करूं। पूजा करना छोटी बात है, आज्ञा का पालन बड़ी बात है। एक बाप के दो बेटे हैं—एक नमस्कार करता है, पग दबाता है, सेवा करता है, पर बाप जो कहता है, वह एक भी नहीं मानता। दूसरा पुत्र सेवा तो नहीं करता, पर आज्ञा का पालन अक्षरशः करता है। दोनों में आज्ञा पालने वाला पुत्र प्रिय लगता है। आचार्य ने कहा—'जो आपकी आज्ञा का पालन करता है, वह पार हो जाता है। जो आपकी आज्ञा का पालन नहीं करता, उसकी नौका डूब जाती है।'

आज धार्मिक जगत् में पूजा अधिक होती है और आज्ञा का पालन कम होता है। फूल चढ़ाते हैं, पूजा करते हैं, नाम का जाप करते हैं, लेकिन भगवान द्वारा कहे गए मार्ग को स्थान कम देते हैं। भगवान् महावीर ने नहीं कहा कि मेरा नाम जपा करो। एक अक्षर भी नहीं कहा। यह भी नहीं कहा कि दूसरों का नाम जपो। भगवान महावीर ने धर्म के दो प्रकार बताए—आगार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म और अनगार धर्म। आगार धर्म गृहस्थ का धर्म है। अनगार धर्म साधु का धर्म है। गृहस्थ का धर्म बारह प्रकार का है—पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत। इनमें उपासना का विधान है, आचार की प्रधानता है।

हमने सम्यक् दर्शन पर काफी चर्चा की है। सम्यक् दर्शन की चार कक्षाओं (सुलभबोधि, सम्यक्दर्शी, व्रती और प्रतिमाधारी श्रावक) में से दो कक्षाओं पर चर्चा चल चुकी है। तीसरी कक्षा व्रती की है।

मनुष्य को व्रती बनना चाहिए। जो महावीर के अनुयायी हैं, जो वास्तव में सफल जीवन जीने के इच्छुक हैं, उन्हें व्रती बनना चाहिए। वर्तमान में सफल जीवन जीना ही धार्मिक का लक्षण है। एक व्यक्ति धार्मिक भी है और वर्तमान में शान्ति भी नहीं है, उसे धार्मिक मानने में संकोच होता है। जो वर्तमान को कलिकाल कहकर कोसते हैं, उसके लिए सतयुग कब आएगा? हमारे वर्तमान जीवन में मोक्ष का साक्षात्कार होना चाहिए। आनन्दपूर्ण जीवन या सुखी जीवन जीने के लिए व्रती होना आवश्यक है।

व्रती कौन?

'निःशल्यो व्रती'—जिसके शरीर में शल्य होता है, वह स्वस्थ नहीं होता। शल्य यानी आन्तरिक घाव। पुराने जमाने में बाणों से लड़ाई होती थी। बाण निकालने पर उसकी नोक भीतर रह जाती थी। वह शल्य कभी-कभी आदमी को भी मार देता था। कैंसर क्या है? भीतर का फोड़ा ही तो है। जब तक शल्य रहता है, नींद नहीं आती। सर्दी में यदि पैर में बड़ा कांटा चुभ जाता है तो वह नींद को हराम कर देता है। छोटी-सी सलाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी चुभने पर नींद में बाधा डालती है। इतने बड़े शरीर में एक कांटा का क्या स्थान है! शरीर विजातीय को स्वीकार नहीं करता। आंख में छोटा-सा रजकण गिर जाता है तो बेचैनी होने लगती है। जब निकलता है, तब शांति मिलती है। शरीर सजातीय को स्वीकार करता है और विजातीय को निकाल देता है।

हमारे मन में अशांति क्यों? जब अशांति आए तो समझिए आत्मा में विजातीय आ गया है और आत्मा उसे निकालना चाहती है। शरीर टूटने पर बीमारी का पता लग जाता है। ये सूचना देने वाले लक्षण होते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सक मानते हैं—बीमारी एक ही है। वह है पेट में विजातीय तत्त्वों का इकट्ठा होना। सिर का दर्द, पैर का दर्द, घुटने का दर्द, ये अलग रोग नहीं। शरीर के अवयव-भेद से रोग के नामान्तर हैं। बीमारी एक ही है, शरीर में विजातीय तत्त्व का संचय हो गया है। दोष भी एक है। कोई चोरी करता है, कोई झूठ बोलता है, कोई अप्रामाणिकता करता है। ये वास्तव में अलग-अलग बुराइयां नहीं हैं। बुराई एक ही है। वह है मोह, राग या द्वेष। राग और द्वेष विजातीय तत्त्व हैं। सारा इनका विस्तार है। राग-द्वेष आदमी में मतिभ्रम पैदा करते हैं। इनका नाम है शल्य। जितनी बुराइयां हैं, वे शल्य हैं। वे द्रव्य, क्षेत्र और काल से प्रकट हो जाती हैं। सर्दी में जुकाम लगता है, गर्मी में तावड़ा लगता है, वर्षा में वर्षाकालीन बीमारी हो जाती है। ये कालकृत बीमारियां हैं। दक्षिण में पादशोथ की बीमारी होती है और राजस्थान में रातिंधा की बीमारी होती है। यह देशकृत बीमारियां हैं। कालकृत बीमारी, देशकृत बीमारी और वस्तुकृत बीमारी की तरह आन्तरिक बीमारी भी होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माया शल्य

'तिविहे सल्ले पण्णत्ते–माया सल्ले, नियाण सल्ले, मिच्छादंसण सल्ले।' शल्य तीन प्रकार का होता है–माया शल्य, निदान शल्य और मिथ्यादर्शन शल्य।

सबसे बड़ा शल्य माया है। छिपाना मनुष्य की सहज मनोवृत्ति है। अपने असौन्दर्य को छिपाने के लिए कपड़ा पहनता है। वस्त्रों का घना आवरण शरीर के भद्देपन को ढांकता है। प्रसाधन सामग्री भी इसलिए प्रयोग में ली जाती है कि असौन्दर्य न दीखे। यदि शरीर पर चमड़ी नहीं होती तो मूलरूप सामने आ जाता। मनुष्य का कंकाल रूप देखने से भय लगता है। चमड़ी ने आवरण डाल दिया, मनुष्य समझता है, मैं सुन्दर लगता हूं। दूसरा आवरण कपड़े का है, तीसरा आवरण प्रसाधन का है। मनुष्य अपने बाह्य को सुन्दर मानता जा रहा है। चौथा आवरण मोह का है, जिससे अन्तर् सुन्दर न होते हुए भी सुन्दर मान रहा है। ऐसा छिपाव नहीं करना चाहिए, जो दूसरे को धोखे में डाल दे। माया भी व्यक्ति को धोखे में डालती है।

एक सज्जन लड़के का सम्बन्ध करने गए। लड़की के पिता ने कुर्सियां-टेबुल लगा दी। लड़की को बिठा दिया। आगन्तुकों का स्वागत किया। लड़की रूप में सुन्दरी थी, पढ़ी-लिखी भी थी। बातचीत करके सम्बन्ध पक्का हो गया। लड़की लंगड़ी है–इसका पता तब चला जब शादी हो गई थी। यह माया शल्य था।

माया आदमी का आन्तरिक शल्य है। व्रती इस प्रकार की माया का व्यवहार नहीं करता। हमने व्रतों को सरल समझ लिया। व्रतों से पहले उनकी भूमिका होनी चाहिए। केवल त्याग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के उच्चारण मात्र से व्रती नहीं बनता। व्रती को मन का निर्माण करना होता है। सबसे पहले माया के शल्य को मिटाना होता है।

निदान शल्य

दूसरा शल्य, निदान। निदान का अर्थ है—भोग की आकांक्षा, विषय की आकांक्षा, पदार्थ की आकांक्षा। व्रती बनने वाला भोग से दूर रहता है। भूख आदमी में होती है और वह लगती है। उससे भी ज्यादा भूख है प्रदर्शन और दिखाने की। व्रती के सामने यह भेद स्पष्ट हो जाता है कि आवश्यक क्या है और अनावश्यक क्या है। उसे सामाजिक जीवन जीना है। भिखारी नहीं बनना है; समाज में प्रतिष्ठा रखनी है। शक्ति-सन्तुलन रखना है। शक्ति का जीवन, समृद्धि का जीवन जीना है तो उसमें से बड़प्पन की बात निकाल देनी है। सही अर्थ में देखिए, आदमी यथार्थ की भूमिका में नहीं जी रहा है।

भगवान महावीर ने बारह व्रतों की व्यवस्था की है। कई कहते हैं, साधुओं को ऐसी व्यवस्था करने की आवश्यकता है। धर्म आकाश में नहीं लटकता। वह चलता है सामाजिक जीवन में। सामाजिक व्यवस्था अच्छी होती है तो धर्म चलता है। सामाजिक व्यवस्था खराब होने पर धर्म नहीं होता। भगवान महावीर ने दूसरे व्रतों के अतिचारों में कहा है—'कण्णालीए' यानी कन्या के विषय में झूठ नहीं बोलूंगा।

भगवान ने ऐसा क्यों कहा? यह हमारा गृहस्थ धर्म का प्रश्न है। जिसके व्यवहार में धर्म का प्रतिबिम्ब नहीं आता, वह धर्म कैसे कर सकेगा? पहला प्रश्न है, समाज की व्यवस्था में सुधार और परिवर्तन कैसे हो? देश की व्यवस्था में सुधार कैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो? सुधार से धार्मिक बनने में सहयोग मिलता है। समाज की व्यवस्था खराब होने से नीचे जाने का मौका मिलता है। समाज में हर आदमी ऐसा नहीं होता, जो हर परिस्थिति को सहकर भी नैतिक बना रहे। बाह्य निमित्तों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। जिसके परिवार में उठने से लेकर सोने तक लड़ाई चलती रहती है, वह क्या सामायिक करेगा? यदि करेगा तो भी सामायिक में वही चिन्तन करेगा। वास्तव में वह केवल मुंह बांध सकता है, पर सामायिक नहीं हो पाता। समाज के लोगों को सोचना चाहिए। समाज की बुराई सब में संक्रांत हो गई। उससे कोई नहीं बच सकता। कोई माने कि मैं बच सकता हूं तो वज्र भूल होगी। इससे बचने के लिए समय पर सोचना होगा। जीवन का क्रम सरल होना चाहिए, जटिलता छूटनी चाहिए। कठिनाई यह है कि जो सम्पन्न वर्ग है, वह सोचता है—अपना काम ठीक चलता है, हम क्यों सोचें? दूसरा गरीब वर्ग है, वह सोचता है—वे इतना करते हैं, हम नहीं करेंगे तो अच्छा नहीं लगेगा।

यह उनके चिन्तन का दोष है। प्राचीन आचार्यों ने श्रावक के इक्कीस गुण बताए हैं। उनमें एक है—**व्ययः आयोचितं कुर्यात्**—व्यय आय के अनुकूल करे। आय का कुछ भाग अपने लिए बचाकर रख दे, जो बुढ़ापा या बीमारी में काम आए। शेष जीवन में अनुताप न करना पड़े। सिर पर ऋण का भार न रहे। ऋण को छोटा समझना मूर्खता है। ऋण कम है, व्रण छोटा है, अग्नि कम है और वैर थोड़ा-सा है—इनको छोटा समझना अज्ञान है। ये छोटे होते ही नहीं।

गुरुदेव भी अपना अमूल्य समय बुराइयों को मिटाने के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए देते हैं। जो समाज हमारे सामने है, उसकी बुराइयां मिटनी चाहिए।

यदि समाज के लोग स्वयं सुलझा लें तो इन बातों को कहने के लिए साधुओं को समय न लगाना पड़े। फिर तो केवल आत्मा, परमात्मा, ध्यान की गम्भीर बातें ही बताएं। यथार्थ की भट्टी में ये सारी बातें हवा हो जाती हैं। हमारी भूमिका मजबूत नहीं है। पहले नींव को मजबूत करना होगा। धर्म-ध्यान को प्रभावित करने वाले आर्त और रौद्र ध्यान कम होने चाहिए।

एक बार प्रान्त के गृहमंत्रालय ने आदेश निकाला कि पुरानी जेल तोड़ दी जाए और उसके चूने-पत्थरों से नई जेल बनाई जाए। थोड़े दिनों के बाद फिर आदेश आया कि जब तक नई तैयार न हो जाए, पुरानी को न तोड़ा जाए। क्या कभी वह बन पाएगी?

हमारे समाज का जीवन भी इन विसंगतियों में गुजर रहा है। जिसे लड़कियां हैं, वह सोचता है, इनकी शादी कैसे करें? नौकरी वाले आदमी हैं, रुपये कहां से लाएं? समाज की व्यवस्था नहीं है। क्या करें और कैसे करें? उसी व्यक्ति के जब लड़के की शादी का प्रसंग आता है तब वह पिछला सारा चिन्तन भुला देता है। इस समय तो सोचता है, जितना धन टान लूं, वह अपना है। क्या वह हमारे जीवन की विसंगति नहीं है? आज जो तीव्र वेदना हो रही है, उसकी अनुभूति होनी चाहिए। जो आदमी बीमारी को बीमारी समझ लेता है, वह ठीक होने का प्रयत्न करता है। जो बीमार होने पर भी स्वस्थ मानता है, वह ठीक कैसे होगा? मैंने कहा और आपने सुन लिया—इससे काम नहीं चलता। केवल वैचारिक भूमिका पर नहीं रहना है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने की भूमिका पर आना चाहिए। अधिक लोगों में कही गई बात हवा में उड़ जाती है, एक-दूसरे पर छोड़ देते हैं। हर बात कुछ लोगों के द्वारा ही की जाती है। जो अग्रणी या नेता बने हुए हैं, उन्हें सोचना है। समाज में कुछ लोग होते हैं, जिनमें विचार-शक्ति और कर्तृत्व-शक्ति होती है। उनसे व्रत की भूमिका स्पष्ट होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्रतों की उपयोगिता

'विरागः सर्वदोषेभ्योऽनुरागस्तव पादयोः।
निपातः सर्वपापानां, प्रणिपातस्तयोर्महान् ॥'

भगवान! मैं चाहता हूं, सब दोषों से मेरे मन में विराग आए। आपके चरणों में अनुराग जुड़े। वैराग्य का अर्थ है—किसी से अनुराग करना। भगवान के चरणों में अनुराग होता है, इसका अर्थ होगा दूसरों से विराग। विराग के लिए कहीं अनुराग होना चाहिए। विषयों से अनुराग होगा तो भगवान से विराग होगा। भगवान से अनुराग होगा तो विषयों से विराग होगा। पहले सोचें, अनुराग कहां करना है। अनुराग नहीं जमा तो विराग नहीं आएगा। भगवान के चरणों में अनुराग होने से दूसरों से विराग स्वतः हो जाएगा। जीवन की हर प्रवृत्ति में यह बात घटित होती है।

व्रतों के प्रति अनुराग होगा तो अव्रत के प्रति विराग हो जाएगा। एक के प्रति अनुराग होना चाहिए। आकर्षण हुए बिना किसी भी चीज का विकास हो नहीं सकता। आकर्षण तब होगा जब उसे दिखलाई दे कि इससे लाभ होगा। बुद्धिमान् हो चाहे कम बुद्धि वाला हो, लाभ की आशा के बिना पैर नहीं बढ़ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सब लाभ के लिए करते हैं। लाभ की भावना हर आदमी के मन में रहती है।

कोई संयम स्वीकार क्यों करता है? इसलिए कि कुछ आकांक्षाओं और प्रवृत्तियों को त्यागना है, जो आज तक करता आ रहा है उसे रोकना है। कुछ लोगों की धारणा है कि खूब खाओ, पीओ और मौज करो। जी भर घी पीओ, पास में न हो तो ऋण करके घी पीओ। आना-जाना कुछ भी नहीं है। सुख से जीओ और सुख-सुविधा के साधन जुटाओ। साधन जुटाने में साधन-शुद्धि की आवश्यकता नहीं है।

एक ओर यह असंयम की धारा प्रबलता से बह रही है। दूसरी ओर कहा जाता है, आशाओं को कम करो, इच्छाओं को कम करो, विलास कम करो, भोग कम करो, जीवन को कसो, उसे खुला मत छोड़ो।

दोनों धाराएं एक-दूसरे के विपरीत हैं। व्यक्ति का सहज आकर्षण असंयम और अव्रत की ओर है, सुख-सुविधा की ओर है। ऐसी स्थिति में धर्म का पलड़ा भारी रहना कठिन है। धर्म में मिलता क्या है! उपवास करो, खाने की सुविधा छोड़ो। ऐसी स्थिति में व्रत के प्रति आकर्षण कैसे होगा?

जिसने बहुत खाया है, वह बीमार पड़ा है। जिसने अधिक भोग किया है, वह मानसिक पीड़ा से व्यथित हुआ है, अशान्त हुआ है। यदि दुनिया में भोग नहीं होता तो मनुष्य त्याग की ओर नहीं झुकता। यदि अधर्म नहीं होता तो धर्म की प्रेरणा नहीं जागती। अव्रत के प्रति आकर्षण ने ही व्रत की ओर प्रेरित किया है।

बैठे रहने में आराम मिलता है। अधिक बैठने से पेट खराब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है, चीनी की बीमारी भी हो जाती है। बैठने से क्रिया हुई तो प्रतिक्रिया भी होनी चाहिए। जो घंटा भर बैठते हैं। वे कुछ समय के लिए खड़े होते हैं, घूमते हैं, क्योंकि अधिक बैठना रोग को निमंत्रण देना है। क्रिया का प्रतिपक्ष होना चाहिए। क्या यह लागू नहीं होता कि जहां असंयम है, उसमें संयम भी होना चाहिए? जिसके जीवन में व्रत-संयम नहीं, वह सुखी जीवन नहीं जी सकता। इन्द्रियों की उच्छृंखलता जितनी बढ़ाएं उतनी बढ़ जाती है। महाभारत में लिखा है—

'पंच वर्धन्ते कौन्तेय! सेव्यमानानि नित्यशः।
आलस्यं मैथुनं निद्रा, क्षुधा क्रोधश्च पंचमः ॥'

आलस्य, मैथुन, निद्रा, क्षुधा और क्रोध—ये पांच सेवन से बढ़ जाते हैं, और सेवन कम करने से कम हो जाते हैं।

हमारे जीवन का असंयम, जिसके प्रति सहज आकर्षण प्रतीत होता है, कभी सफल नहीं होता। इतिहास में जो महापुरुष हुए हैं, चाहे वे विज्ञान के क्षेत्र के हों, चाहे शिक्षा के क्षेत्र के हों, चाहे धर्म के क्षेत्र के हों, चाहे राजनीति के क्षेत्र के हों, उन्होंने संयम किया है। उनका जीवन त्याग और ब्रह्मचर्यपूर्ण रहा है। इनके बिना जीवन-शक्ति भी केन्द्रित नहीं होती।

फ्रांस का एक वैज्ञानिक हुआ है। उसने विज्ञान पर नौ सौ निबन्ध लिखे। वह इतना चंचलचित्त था कि उसने एक भी निबन्ध पूरा नहीं किया। एक विद्वान् का मत है कि यदि वह पांच निबन्ध भी पूरा कर देता तो महान् वैज्ञानिकों की श्रेणी में आ जाता। मन की अस्थिरता के कारण वह सफल नहीं हो सका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयम या व्रत का अर्थ है अपने आपको एक बिन्दु पर केन्द्रित करना। सूर्य की खुली रश्मियों से कुछ नहीं होता। उनको शीशे में केन्द्रित करने से दाहक शक्ति पैदा हो जाती है। केन्द्रित रश्मि कागज पर फेंकिए, वह जल जाएगा। खुली हवा में कुछ नहीं होता। हवा को दृति में भर लेने से वह नदी को पार करा देती है। हम अपनी इन्द्रियों और मन को केन्द्रित नहीं कर पाते, इसीलिए शक्ति व्यर्थ चली जाती है। केन्द्रित करने से शक्ति का विकास होता है। व्यापार में भी वे ही सफल होते हैं, जिन्होंने मन को केन्द्रित कर काम किया है। जिनमें दृढ़ संकल्प नहीं रहा, वे कभी सफल नहीं हुए। ध्यान भारतीय दर्शन की देन है। इसके द्वारा आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन में सफलता पा सकते हैं। हिटलर दृढ़-संकल्पी था, यद्यपि उसका क्षेत्र हिंसा का था। भगवान महावीर ने स्थानांग सूत्र में तीन प्रकार के शूर बतलाए हैं—दानशूर, कर्मशूर और धर्मशूर। वह कर्मशूर था। उसमें इतनी शक्ति कहां से आई? नेपोलियन जितना बड़ा विजेता था, उतना ही दृढ़-संकल्पी और मन को स्थिर रखने वाला था।

राजनीति में महात्मा गांधी आए। उन्होंने कितना बड़ा काम किया। वे जीवन में व्रत का महत्त्व समझते थे। उन्होंने अपने लिए ग्यारह व्रत बनाए थे। वे व्रत दूसरों के लिए भी थे।

हर व्यक्ति, जो सफल हुए हैं, उन्होंने व्रतों का आचरण किया है। व्रत हमारी जीवन की निष्ठा को और वृत्तियों को केन्द्रित करता है।

देखने में असंयम का पक्ष आकर्षण का लगता है। जहां जीवन में संतुलन नहीं, वहां सामाजिक जीवन भी अच्छा नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता। शरीरशास्त्री कहते हैं—एक घंटा चलने से शरीर में एसिड बढ़ता है, स्नायु-शर्करा कम हो जाती है। उसे बढ़ाने के लिए पांच मिनट का आराम करना चाहिए। कोई भी ऐसा नहीं जो सतत चलता हो, स्थिति नहीं करता। गति और स्थिति, श्रम और विश्राम, नींद और जागरण दोनों उपयोगी हैं। काम के बाद आराम और उसके बाद फिर काम करता है, वही सफल होता है। गति के बाद स्थिति और फिर गति होती है, तब हम अव्रत के बाद व्रत की बात क्यों भुला देते हैं!

समाज नियंत्रण करता है। कोई भी अनियंत्रित नहीं रह सकता। अमर्यादित जीवन समाज में चल नहीं सकता। मर्यादा दो प्रकार की होती है—एक भीतर से आती है और दूसरी बाहर से थोपी जाती है। जिसके अनुशासन भीतर से आता है, उसका बाहरी अनुशासन कम हो जाता है। वह समाज शिष्ट व उन्नत होता है जिसमें आंतरिक अनुशासन होता है। सरकार से या बाहर से किसी से थोपा गया अनुशासन अच्छा नहीं होता। यौगलिक युग में इतना अनुशासन था कि कोई भी गलत काम करना नहीं चाहता था। कोई कह देता कि 'तुमने यह किया' उसके लिए फांसी के समान दंड था। आज तो इसका कोई मूल्य ही नहीं है।

जैसे वस्तु का विकास बढ़ा, वैसे ही लालसा बढ़ती गई। वस्तुओं के विकास के बिना समाज का स्तर ऊंचा नहीं होता। जिस घर में पंखा, बिजली, रेडियो, फ्रीज नहीं होता, वह उच्चस्तरीय घर नहीं कहलाता। एक ओर विकास के मापदंडों की पूर्ति के लिए साधनों को बढ़ाना आवश्यक है, दूसरी ओर जीवन का क्रम है। जहां ये चीजें बढ़ती हैं, आत्मानुशासन कम होता चला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। आप देखिए अमेरिका को। समृद्धि में वह बहुत ऊंचा है, किन्तु वहां आत्म-नियंत्रण की शक्ति ढीली हो गई है। वहां जितने पागल हैं, कहीं भी नहीं हैं। अपराधों की संख्या भी वहां सबसे अधिक है। वहां अपराध-निरोध का जितना बजट है, वह भारत के सारे बजट के समान है। जैसे-जैसे साधन-सम्पन्नता बढ़ती है, मनुष्य की आकांक्षा बढ़ती है, वैसे-वैसे अपने ऊपर नियंत्रण की शक्ति घटती जाती है, ज्ञान-तंतु ढीले होते जाते हैं। यदि आत्म-नियंत्रण की शक्ति को बढ़ाना है तो अपनी आत्मा पर अपने द्वारा नियंत्रण करना होगा।

दो रास्ते हैं—असंयम और संयम का, अव्रत और व्रत का। मार्ग का चुनाव स्वयं को करना है। यद्यपि आकर्षण असंयम की ओर ज्यादा है, यह बहुमत का मार्ग है। सहज बात है, झुकाव उधर अधिक होगा।

मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि समाज का विकास न हो, किन्तु फिर भी यथार्थ पर आवरण नहीं डालना चाहिए। नग्न सत्य सामने आ रहा है कि जिन्होंने एकांगी असंयम का पोषण किया, वे भटक रहे हैं।

कोरी भोग-लालसा से मन की विच्छृंखलता आ गयी है। भारतीय दर्शनों ने जीवन का एक पक्ष लिया था—संयमासंयमी। सब पूरा संयम नहीं रख सकते, सब ब्रह्मचारी नहीं बन सकते। सबके लिए पूरे संयम की बात व्यावहारिक भी नहीं है और संभव भी नहीं है। पूरा समाज असंयमी हो तो काम नहीं चल सकता। जीवन में कुछ असंयम है तो कुछ संयम भी होना चाहिए। तभी स्वस्थ समाज बन सकता है। जिनमें असंयम जितना ज्यादा हो, उसे उतना ही अधिक संयम करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिकित्सक के पास एक साथ दो रोगी गए। दोनों का निदान किया। एक से कहा—तुम सर्दी में मेथी के लड्डू बनाकर पौष्टिक भोजन करो। दूसरे को देखकर कहा—तुम भोजन करते हो, उसमें कमी करो। दिन में एक बार ही भोजन करो। यह एक के प्रति मोह, दूसरे के प्रति विद्रोह नहीं था। यह पक्षपात नहीं है। परन्तु दोनों के हित के लिए कहा गया था। जिसने ज्यादा खाद्य-असंयम किया था, उसे अधिक संयमित रहने को कहा गया। उसके लिए व्रतों की अधिक आवश्यकता है। जिसका मन चंचल और अस्थिर हो, व्रतों का विकास जीवन में आवश्यक है। जितना खाना-पीना उपयोगी है, उतना ही व्रत उपयोगी है, बल्कि मेरी समझ में व्रत उससे भी अधिक उपयोगी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिवर्तन का घटक धर्म

समस्याएं हैं और वे सबके सामने स्पष्ट हैं। प्रश्न है उनके समाधान का। क्या उनका समाधान है या अनन्तकाल तक बनी रहेंगी? क्या हृदय-परिवर्तन किया जा सकता है? आज समस्त मानव जाति के सामने हिंसा, अपराध और आक्रमण की समस्याएं हैं। ये सबको परेशान कर रही हैं। इनसे भी बड़ी और जटिल समस्या है मानसिक तनाव की। क्या इन समस्याओं से बचा जा सकता है? गुरुदेव ने इन समस्याओं पर गंभीरता से चिंतन किया और समाधान के रूप में अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया। एक नवीन आचार और विचार प्रस्तुत किया। यह नया धर्म बन गया।

आजादी के पूर्व लोगों का चिन्तन था कि स्वतंत्रता प्राप्त के बाद नए निर्माण होंगे। दूध-दही की नदियां बहेंगी। खुशहाली और अमन-चैन होगी। स्वतन्त्रता का अपना एक उन्माद होता है। परतन्त्रता के बाद स्वतन्त्रता मिलने पर चिन्तन और दृष्टिकोण में परिवर्तन आ जाता है। आजादी मिलने के बाद जो कल्पनाओं के महल खड़े थे, वे ढह गए, मोह भंग हो गया। राजनीतिक आजादी मिली, मानसिक गुलामी अपनी जगह कायम रही। गुरुदेव ने मूल सचाई को पकड़ा। अणुव्रत की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार-संहिता प्रस्तुत की। वह सचाई यह है कि हम लोग चाहे धर्म के क्षेत्र में हों या शिक्षा के क्षेत्र में, सिद्धान्त को जितना महत्त्व देते हैं, उतना प्रयोग को नहीं। प्रवचन, उपदेश में विश्वास करते हैं, प्रयोग में नहीं। बहुत बड़ा प्रश्न है धर्म-क्षेत्र के सामने कि इतने धर्म-गुरु, धर्मोपदेशक और धर्म-ग्रंथ हैं फिर भी समाज बदल नहीं रहा है। इतनी विद्या की शाखाएं, इतने विद्यालय? इतने शिक्षक फिर भी विद्यार्थी बदल नहीं रहे हैं। इसका कारण है कोरा उपदेश। गीता का प्रवचनकार अनासक्त योग पर बहुत अच्छा बल देता है, किन्तु स्वयं अनासक्त नहीं बनता। जैन आगमों का एक व्याख्याता अहिंसा, करुणा, मैत्री आदि पर बहुत अच्छा प्रवचन दे देता है पर अपने स्वयं के जीवन में अहिंसा, परिग्रह का विकास नहीं करता। गीता के सिद्धान्त के साथ-साथ अनासक्त योग के जो प्रयोग जुड़े हैं उनका कोई आचरण नहीं करता, केवल व्याख्या करता है। अहिंसा और अपरिग्रह के प्रयोग नहीं किए जाते। इस विषय पर चिन्तन करते समय गुरुदेव के मन में यह बात आई कि हमें कोई ऐसा मार्ग खोजना चाहिए जिस पर चलने से हृदय-परिवर्तन हो सके। पुरानी भाषा में हृदय-परिवर्तन और आज की वैज्ञानिक भाषा में रासायनिक परिवर्तन। जब तक रासायनिक परिवर्तन नहीं होता, तब तक हजार बार पढ़ने और सुनने के बाद भी आदमी नहीं बदलता। मूल बात है भाव-परिवर्तन और भाव-परिवर्तन के साथ सम्बन्ध है हमारी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के रसायनों का।

साधना की दृष्टि से हमने प्रेक्षाध्यान का जो क्रम बनाया है, वह यह है कि कर्म से उत्पन्न होता है भाव और भाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से उत्पन्न होते हैं रसायन। रसायन उत्पन्न करने वाले ग्लैण्डस में जो हारमोंस बनते हैं वे एक जैसे नहीं होते, भाव के अनुसार होते हैं। जैसे हमारा आन्तरिक भाव होता है, वैसे ही रसायन उत्पन्न होते हैं और ये रसायन प्रभावित करते हैं हमारे आचार, विचार और व्यवहार को। आदमी के आचार, विचार और व्यवहार को कौन कण्ट्रोल कर रहा है? इस पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाए तो पता चलेगा कि नर्वस सिस्टम में जो मुख्य-मुख्य ग्लैंडस हैं, वे सब कण्ट्रोल करते हैं हमारे आचार, विचार और व्यवहार को। जब तक इनके बदलने की बात न की जाए तब तक संभव नहीं कि विद्यार्थी या समाज का कोई व्यक्ति बदल सके। केवल पत्तियों को पकड़ने से काम नहीं चलेगा, हमें जड़ तक पहुंचना होगा।

हमारा यह अनुभव है कि बारह वर्ष की अवस्था तक यदि किसी विद्यार्थी के पीनियल ग्लैंडस को सक्रिय रखा जा सके तो नयी पीढ़ी का निर्माण किया जा सकता है। बारह वर्ष की अवस्था के बाद पीनियल ग्लैंडस निष्क्रिय होना शुरू हो जाती है। इस अवस्था तक यह ग्रन्थि उसकी आपराधिक प्रवृत्ति पर नियन्त्रण रखती है और उसके बाद वह अप्रभावी होती चली जाती है।

आज प्रायः सुना जाता है हर किसी से कि कथनी और करनी में असमानता बढ़ रही है। पर क्यों? इस कारण पर विचार करेंगे तो पाएंगे कि हमारा आवेश यह सब कर रहा है। गुरुदेव बहुत बार कहते हैं कि हमने कोई ठेका नहीं ले रखा है कि सारे संसार को सुधार देंगे। किन्तु हमारे पास एक उपाय है, जिसके द्वारा आदमी को बदला जा सकता है। यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर नहीं, अनुभव और प्रयोगसिद्ध बात है। हमने अपने और हजारों-हजारों व्यक्तियों पर परीक्षण किया है और देखा है कि किस प्रकार व्यक्ति संतुलित और सामान्य बन जाता है।

आज धर्मगुरु की अपेक्षा शिक्षक पर ज्यादा जिम्मेदारी है। क्योंकि विद्यार्थी शिक्षक के नजदीक ज्यादा है। सारा दायित्व शिक्षा पर है। यदि शिक्षा के द्वारा यह भावात्मक विकास नहीं हो सकता तो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र का क्या होगा, यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है। जीवन विज्ञान के क्षेत्र में यह परिकल्पना है कि योग समवाय के द्वारा ऐसा कुछ किया जाए। शिक्षा संस्थाएं तो बहुत लम्बा समय लेती हैं। हम जिस प्रयोग की बात कर रहे हैं, वह मात्र तीस-चालीस मिनट का है। एक प्रयोग कराया जाए पांच दिन और एक दिन केवल सैद्धान्तिक बात बतलाई जाए। एक वर्ष बाद इसका सर्वेक्षण किया जाए तो निश्चय ही इसके परिणाम चौंकाने वाले होंगे।

अवचेतन मन की सुप्त शक्तियों को जागृत किया जा सकता है। हिन्दुस्तान के आदमी में काफी दक्षता है। उसकी शक्ति, सामर्थ्य और कुशलता का लोहा सारी दुनिया मानती है। किन्तु यहां का आदमी बहुत चरित्रवान् होता है, यह धारणा अभी नहीं बन पाई है। हम अपने जीवन को बदलें, केवल सैद्धान्तिक तौर पर नहीं, प्रायोगिक तौर पर। धर्म जीवन को परिवर्तित करने की कला सिखाता है। परिवर्तन के अनेक घटक तत्त्व हैं। उनके सशक्त तत्त्व है—ध्यान। ध्यान धर्म से भिन्न नहीं है। ध्यान कहो या धर्म कहो, कोई अन्तर नहीं पड़ता। धर्म केवल चिन्तन नहीं, क्रिया है। ध्यान भी केवल चिन्तन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं, क्रिया है। दोनों को जीना होता है। इनका सैद्धान्तिक पक्ष उतना कारगर नहीं होता, जितना इनका क्रियात्मक पक्ष कारगर होता है। सिद्धान्त केवल मस्तिष्क को छूता है, क्रिया हृदय का स्पर्श करती है, परिवर्तन वहीं घटित होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वभाव-परिवर्तन

एक विदेशी व्यक्ति भारत के साधक के पास आया और बोला—'मैं यहां रहना चाहता हूं।' साधक ने उत्तर दिया—'रह सकते हो।' विदेशी ने आगे कहा—'मैं बहुत जगह जाकर आया हूं। मेरी आदत है कि मुझसे कठोरतम काम कराया जाए तो मैं रहता हूं।' साधक ने कहा—'ठीक है।'

साधक ने पहला प्रश्न किया—'किसी के गाली देने पर क्रोध करना कठिन है या क्षमा करना कठिन है?' 'क्षमा करना कठिन है।' 'मैं पहला काम यह कहता हूं कि किसी के गाली देने पर गुस्सा न करो।'

साधक ने दूसरा प्रश्न किया—'मन की इच्छा के अनुसार चलना कठोर है या दूसरे के अनुशासन में चलना?' उसने उत्तर दिया—'दूसरे के अनुशासन में चलना कठोर काम है।' साधक ने कहा—'आज से तुम पूर्ण रूप से मेरे अनुशासन में चलोगे।' ये दो कार्य मैं तुमको देता हूं।' वह भी बात का पक्का था। उनका बराबर पालन किया। छह मास में जीवन बदल गया। आगे चलकर वह साधक बन गया।

सबके लिए अनुशासन में रहना कठोर होता है। यदि रह जाएं तो सही अर्थ में आदमी बन जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिष्य किसके होते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में गुरुदेव कहते हैं—**'सीसस्स हुंति सीसा, न हुंति सीसा असीसस्स'** जो शिष्य होता है, उसी के शिष्य होते हैं। गुरु के शिष्य नहीं होते। जो कभी शिष्य नहीं रहा, वह शिष्य नहीं रख सकता। उसे अनुभव ही नहीं होता कि अनुशासन कैसे निभवाया जाता है।

जो अनुशासन में रह गया है, वही अनुशासन कर सकता है। जो सास बहू बनकर न रही हो वह अपनी बहू को नहीं रख सकती। सास हुक्म चलाती है, पर स्वयं ने नहीं सीखा कि हुक्म कैसे पाला जाता है। गुरुदेव स्वयं कठोर अनुशासन में रहे हैं। उन्होंने हमारे सामने कभी हंसी-मजाक नहीं किया। हमें कहते—अभी तुम पांच-सात वर्ष बातें मत करो। अभी बातोड़ी बन जाओगे तो फिर जीवनभर दूसरे के अंकुश में रहना पड़ेगा। नहीं तो तुम स्वयं स्वतंत्र हो जाओगे। यह अनुशासन जीवन की कला है। जो अनुशासित हो जाता है, वह कई अच्छी बातें ग्रहण कर लेता है। आज दुनिया में ध्वंस क्यों चल रहा है? इसलिए कि प्रारंभ में ऐसे संस्कारों का निर्माण नहीं हुआ, जिससे मनुष्य निर्माण कर सके। एक घड़ा दो कंकड़ों से फूट सकता है, परन्तु उसे बनाने में समय लगता है, शक्ति लगती है।

महात्मा बुद्ध के पास डाकू आए। बुद्ध ने पूछा—'कौन हो?' 'हम डाकू हैं।' 'कैसे आए?' 'आपके पास आए हैं।' 'डाका क्यों डालते हो?' 'समाज की विवशता है।'

डाकुओं का जीवन सुखी जीवन नहीं है, परन्तु बाध्यता के कारण वे डाकू बन जाते हैं। डाकुओं में पढ़े-लिखे, वकील, डॉक्टर और सैनिक होते हैं। समाज की दुर्व्यवस्था इनको डाकू बना देती है। बुद्ध ने सोचा—यह समाज के विघटन का काम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, ध्वंस का काम है—ऐसा नहीं होना चाहिए। उनको समझाने के लिए बुद्ध ने कहा—सामने वाले वृक्ष की चार पत्तियां तोड़ लाओ। वे बुद्ध के पास तोड़कर ले आए। बुद्ध ने डाकुओं के मुखिया से कहा—'इन्हें लो और वापस जोड़ आओ।' मुखिया बोला—'तोड़ना हमारे हाथ है, जोड़ नहीं सकते।' बुद्ध ने समझाया—'देखो! ध्वंस सरल होता है, निर्माण कितना कठिन होता है। जीवन का निर्माण बहुत कठिन होता है।' बच्चों को प्रारंभ में अच्छे संस्कार न मिलने से वे बिगड़ जाते हैं। हर व्यक्ति में अच्छाई और बुराई होती है। प्रश्न है, किसे प्रकट किया जाए? अच्छाई और बुराई का जैसा निमित्त मिलेगा, वह प्रकट हो जाएगी। हर लड़का अच्छा भी होता है और बुरा भी होता है।

वैज्ञानिकों ने खोज की है। मनुष्य के सिर में बेर जितनी दो ग्रन्थियां हैं—सुख की और दुःख की। किसी उपकरण के द्वारा, बिजली के द्वारा अथवा योग साधना के द्वार सुख की ग्रन्थि को उत्तेजित कर दिया जाए तो हजार सुविधा मिलने पर भी दुःख नहीं होगा। कठिनाई है कि दोनों ग्रन्थियां साथ-साथ जुड़ी हुई हैं। कहीं भूल से सुख के स्थान पर दुःख की ग्रन्थि उत्तेजित हो जाए तो फिर दुःख ही दुःख की अनुभूति होने लगेगी।

यही बात बालकों के निर्माण की है। अच्छाई को उत्तेजित करने से बुराई दब जाएगी। आजकल हर व्यक्ति के मानस का परिवर्तन किया जा सकता है, ब्रेनवाशिंग की प्रक्रिया के द्वारा। न केवल बच्चों का ही, बल्कि बड़े-बड़े लोगों का भी संस्कार बदला जाता है। दो टिकिया देने से, आने वाला गुस्सा बंद हो जाता है। जो काम साधना से होता था, आजकल वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन दवाओं से होने लगा है। अमेरिका में इसका प्रयोग चलता है। याद रखिए, स्वभाव बदला जा सकता है। धर्म का अर्थ ही है—स्वभाव बदलना। यह मानना भूल है कि स्वभाव बदला नहीं जा सकता।

आदत कभी नहीं बदल सकती, यह किसने अज्ञान फैलाया? यह गलत है। यदि स्वभाव नहीं बदल सकता तो आपको धर्म करने की आदत छोड़ देनी चाहिए। आदत न बदले तो तपस्या, ध्यान, स्वाध्याय किसलिए है? आप मानिए कि साधना से आदत बदलती है। बुरे काम करने वाले के मन में भावना जाग जाए कि यह मुझे नहीं करना है तो वह छोड़ सकता है। बुरी आदत है तो जंगल में या एकान्त में जाकर स्वतः सूचना दो कि मुझमें प्रेम, मैत्री का विकास हो रहा है। आधा घंटा तक दोहराएं तो चमत्कारपूर्ण असर होगा।

क्यों मान बैठें कि स्वभाव नहीं बदले? हर आदत को बदलना है। कोई श्रावक साधु बनता है, संयम करता है, क्या वह नहीं बदलता? ऐसे भी साधु हैं जो गृहस्थ अवस्था में एक दिन में १० बार लड़ते थे। लेकिन साधु बनने के बाद एकदम बदल गए। कभी मत मानिए कि आदत नहीं बदलती। बच्चा एक बार असावधानी से बिगड़ जाता है। वह न सुधर सके तो क्या इसका अर्थ होगा वह सदा के लिए बिगड़ गया? बिगड़ा हुआ बालक भी सुधरता है, और आदमी भी सुधरता है। स्वभाव भी बदला जाता है। बुरे स्वभाव का परिवर्तन करना ही धर्म है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कारों का परिवर्तन

'पन्नगे च सुरेन्द्रे च, कौशिके पादसंस्पृशि।
निर्विशेषमनस्कायः श्रीवीरस्वामिने नमः ॥'

भगवान महावीर को नमस्कार करता हूं जो शत्रु और मित्र पर समान थे। कौशिक (सर्प), जिसने डंक मारा, उसे भी कृपा-दृष्टि से देखा और कौशिक (इन्द्र), जिसने नमस्कार किया, उसे भी उसी दृष्टि से देखा। समदृष्टि से देखने वाले महान् आत्मा को नमस्कार करता हूं।

स्वभाव परिवर्तन

नया और पुराना पर्याय का क्रम है। पर्याय का परिवर्तन न हो तो दुनिया में कुछ टिकता नहीं। जिसका पर्याय परिवर्तन होता है, वही वस्तु टिकती है। क्या कोई वस्तु है, जो है, पर बदले नहीं?

जिसमें उत्पाद, व्यय और ध्रुवता होती है, वही सत् होता है। जिसमें उत्पाद और व्यय नहीं, वह सत् नहीं हो सकता। दूध को जामिन देते हैं, दही बन जाता है। दूध का रूप व्यय होता है, दही का रूप उत्पन्न होता है। लेकिन गोरस दोनों में रहता है। आयुर्वेद में कहा है--दूध को खाना चाहिए और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोटी को पीना चाहिए।

दुनिया में हर वस्तु बदलती है। मनुष्य भी बदलता है। संस्कारों को भी बदलना चाहिए। शिविर भी इसलिए कि बच्चों के संस्कार बदलें। धार्मिक होने का अर्थ है—रोज परिवर्तन करना। धार्मिक होकर जो न बदले, वह धार्मिक नहीं है। क्रोध की आदत बदलनी है। गाली देने की आदत पड़ गई है, उसे बदलना है। चुराने की आदत बदलनी है, अहंकार को बदलना है। वह धार्मिक नहीं है, जिसके मन में बदलने की भावना नहीं होती। वह साधु नहीं, जो स्वभाव को न बदले। मन के प्रतिकूल हो उसे भी सहन करना चाहिए। स्वार्थ की भावना नहीं रहनी चाहिए। वह अनर्थों की जड़ है। आज समाज की यह कठिनाई है। एक व्यक्ति दूसरे के घर के सामने गंदगी डालता है। दूसरा उसके सामने डालता है। परिणाम में दोनों को गंदगी मिलती है, क्योंकि स्वार्थ-विसर्जन या निःस्वार्थ की भावना दोनों में नहीं है। व्यक्ति का कल्याण तब तक नहीं होता जब तक निःस्वार्थ भावना न आए। धर्म का स्थान परमार्थ है। लोग अपने लिए बहुत सोचते हैं। अपने हित और अपने स्वार्थ के लिए सोचते हैं। वहीं लड़ाई पैदा होती है, जहां हितों का संघर्ष होता है। हितों का संघर्ष नहीं, सामंजस्य होना चाहिए।

एक किसान खेती करता था। उसके दो लड़कियां थीं। एक किसान के घर ब्याही थी, दूसरी कुम्हार के घर। पिता लड़कियों से मिलने गया। पहले कुम्हार के घर गया। पूछा—'कैसा हाल है?' उत्तर मिला—'अच्छा ही है, किन्तु...।' पिता ने पूछा—'किन्तु क्या है?' 'घड़ों का आवां पक रहा है, बादल मंडरा रहे हैं, वर्षा न आए तो अच्छा है। वर्षा आ गई तो आवां खराब हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाएगा। घाटा लग जाएगा। आप प्रार्थना करें, वर्षा न आए।'

फिर पिता दूसरी लड़की के पास गया। वही प्रश्न किया—'कैसा हाल है?' 'सब कुछ ठीक है, किन्तु ।' 'फिर किन्तु क्या है?' 'पहले वर्षा हुई थी, बाजरी आदि हो रही है। ये बादल मंडारा रहे हैं, लेकिन बरस नहीं रहे हैं। आप प्रार्थना करें, ये बरस जाएं।' पिता के लिए दोनों ओर समस्या है।

इसका नाम है हितों का द्वन्द्व, हितों का संघर्ष। आज के समाज में मजदूर का हित अलग है, मालिक का हित अलग है। मिल-मालिक चाहता है थोड़ा दूं और अधिक काम लूं। मजदूर चाहता है कि काम कम हो और दाम अधिक मिले। दोनों ओर विचारों का द्वन्द्व है।

सिद्ध पुरुष आया। सब लोग गए। परिचय हुआ। आप क्या देते हैं? एक आदमी को एक वरदान। जमींदार ने मांगा—'भगवन्! एक वरदान मुझे दीजिए। मेरा यह ठाटबाट, नौकर-चाकर, भूमि-ऐश्वर्य जो है, वह बना रहे। मुझे और कुछ नहीं चाहिए।' सिद्धपुरुष ने कहा—'तथास्तु।' फिर मजदूर ने वरदान मांगा—'भगवन्! एक वरदान मुझे भी दीजिए—मनुष्य मनुष्य का गुलाम न रहे।' सिद्धपुरुष बोला—'तथास्तु।' फिर जमींदार खड़ा हुआ—'भगवन्! यदि मनुष्य मनुष्य का गुलाम नहीं रहा तो मेरे वरदान का अर्थ क्या होगा?'

यह मनुष्य का ऐश्वर्य किसके कंधे पर चलता है? दूसरे की गुलामी पर चलता है। हितों का द्वन्द्व पहले भी था, आज भी है।

पिता ने सोचा—अब क्या करूं, दोनों में विरोध है। एक पुत्री चाहती है, बादल न बरसे। दूसरी चाहती है, बादल बरसे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की भावना एक-दूसरे को सुनाई। फिर कहा—बरसा न बरसे तो आंवे की कमाई का आधा हिस्सा इसे दे देना। वर्षा हुई तो खेती का आधा हिस्सा तुम इसे दे देना। दोनों के हितों का सामंजस्य करा दिया। आज विरोधीहितों का सामंजस्य करने वाला पिता कहां है!

धार्मिक के लिए यह आवश्यक है कि वह परमार्थ के पथ पर चले। जो परम अर्थ को समझ लेता है, वह स्वार्थी नहीं हो सकता। कुछ परमार्थ का प्रश्न आने पर कहते हैं, हम दूसरों के विषय में क्यों सोचें? दूसरों के लिए व्यर्थ में कर्म क्यों बांधे? मानो वीतरागी बन जाते हैं। जब वे दुकान में बैठते हैं, तब नहीं सोचते कर्म बांधें? उस समय कहते हैं, यह गृहस्थ का खाता है। ऐसा न करें तो काम कैसे चले?

बहिन-बेटी की रकम हड़पने में संकोच नहीं। यह मन की विडम्बना है या वैराग्य? वैराग्य हो तो रूपचन्दजी सेठिया की तरह सोचेगा। वे स्वयं कम द्रव्य खाते थे, पर कोई पाहुना घर पर आ जाता तो उसकी चिन्ता स्वयं करते। किसी ने उनसे पूछा—आप अपने लिए इतना संयम करते हैं, फिर दूसरों के लिए इतनी चेष्टा क्यों करते हैं? वे कहते—संयम मेरे मन में है या इनके? ये अतिथि हैं, इन पर अपना संयम क्यों थोपूं? होता उल्टा है। अपने लिए सब खुलावट रखते हैं और संयम दूसरों पर थोपते हैं। स्वार्थ को बड़ा स्थान मिल गया। जिसमें स्वार्थ की भावना प्रबल होती है, उसमें धर्म की भावना विकसित नहीं होती।

समाजशास्त्रियों ने मानदंड बताया कि अपने लिए करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाला साधारण व्यक्ति होता है और दूसरों के लिए करने वाला बड़ा आदमी होता है। भामाशाह बड़े क्यों बने? इसलिए कि उन्होंने अपना सारा धन देश की रक्षा के लिए न्योछावर कर दिया। दूसरी ओर कुछ लोग ऐसा चिन्तन करते हैं कि देश में लड़ाई शुरू हो गई है, जितना घर भर सकें, भर लें। भामाशाह ने स्वार्थ का विसर्जन किया। ऐसे उदारहण इतिहास में कम मिलते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख क्या है? (१)

'बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्,
त्वं शंकरोसि भुवनत्रयशंकरत्वात्।
धातासि धीर! शिवमार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोसि॥'

गुरुदेव मानतुंग ने भगवान ऋषभ की स्तुति में कहा—भगवन्! आप बुद्ध हैं, शंकर हैं, विधाता हैं, पुरुषोत्तम हैं। ऋषभ बुद्ध, शंकर, विधाता और पुरुषोत्तम कैसे हो सकते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य ने कहा—आप बोधिमय हैं, इसलिए बुद्ध हैं। सुख करने वाले हैं, इसलिए शंकर हैं। मुक्ति-विधान के कर्ता हैं, इसलिए विधाता हैं। आप पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, इसलिए पुरुषोत्तम हैं।

मनुष्य की समूची प्रवृत्तियों के पीछे दो मुख्य प्रेरणाएं होती हैं—दुःख-मुक्ति और सुख-प्राप्ति। जिसमें दुःख-मुक्ति की आकांक्षा नहीं है, वह कोई प्रवृत्ति क्यों करेगा? जिसमें सुखी बनने की भावना नहीं है, वह कोई प्रवृत्ति क्यों करेगा?

संस्कृत कवि ने लिखा है—**'सर्वारम्भाः तण्डुलप्रस्थमूलाः'**—हमारे सारे प्रयत्न सेर भर चावल के लिए हैं। लेखक दक्षिण या पूर्व दिशा का था, इसलिए चावल लिखा है। यदि वह उत्तर भारत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का होता तो चावल के स्थान पर गेहूं लिखता। भूख कष्ट देती है, उसे मिटाने के लिए आदमी खाता है, क्योंकि खाने से सुख मिलता है। यदि सुख नहीं मिलता तो आदमी खाना नहीं खाता। कवि-गोष्ठी में चर्चा चली कि मधुर क्या है? एक ने कहा—दही। दूसरा बोला--मधु। तीसरा बोला—द्राक्षा। चौथा बोला—शर्करा। पांचवां बोला—भई! असंख्य वस्तुएं हैं, कितने नाम गिनाओगे? यथार्थ यह है कि जिसका मन जहां रुचे, उसके लिए वही मधुर है।

कोई कहता है आराम करना सुख है और कोई कहता है काम करना सुख है। कोई कहता है अनुकूल परिस्थिति का निर्माण करना सुख है। कोई कहता है प्रतिकूल परिस्थिति से जूझना सुख है। हम कवि की भावना को इन शब्दों में प्रस्तुत कर सकते हैं—

सुख-दुःख क्या है मनोभावना,
जिसने जैसा कर माना।
मधुकर ने अपने मरने को,
था अनन्त सुखमय जाना।

यह बहुरंगी दुनिया है। इसलिए सब भिन्न-भिन्न सोचते हैं। सभी एक प्रकार से सोचते तो जड़ता आ जाती। उपनिषद् में कहा है—**'स एकाकी नैव रेमे'**—भगवान का भी अकेले में मन नहीं लगा। आदमी विविधता या बहुरूपता चाहता है। पुष्पवाटिका में नाना प्रकार के फूल मिलेंगे। फिर नाना विचारों में कष्ट क्यों? विचार भी तो मन का एक पुष्प है। विचारों की विविधता होना सौन्दर्य का पहला लक्षण है। एकरूपता में कवियों के लिए कठिनाई हो जाती है कल्पना करने में। एकरूपता में क्या लिखता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से पेट दर्द करता है, खाने से नहीं करता। फिर खाना सुख कैसे? खाने से बीमारी शान्त होती है। सिर का दर्द कभी-कभी होता है, पर जठराग्नि की पीड़ा प्रतिदिन होती है। अभी खाया, छह घण्टे बाद फिर भूख लग जाती है। भूख रोग है और खाना रोग की दवा है। रोग पर दवा लेना भी क्या सुख है? यदि है तो खाना भी सुख हो सकता है।

क्या संगीत सुनना सुख है? ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को संगीत सुनाएंगे तो वह कहेगा—शोर क्यों मचाते हो? आराम करने दो। संगीत सुख कहां हुआ?

भौतिक साधनों में सुख हो भी सकता है, नहीं भी होता है। आगम की कहानी है—एक राजा जंगल में गया। रास्ता भूल गया। प्यास लग गई। जंगल में कोई नहीं मिला। एक भील मिला उसको संकेत से समझाया। भील ने पानी पिलाया और खाने को दिया। राजा उसे उपकारी मान अपने साथ राजधानी ले गया। महल दिखाया, खाना खिलाया, सभा दिखाई। नाटक दिखाने के लिए नाटक का आयोजन किया। राजा बैठ गया। नर्तकी आई। वादित्र बज रहे हैं, गायन के साथ नृत्य थिरक रहा है, भील देख रहा है। देखते-देखते चिन्ता में फंस गया। बाहर गया। लोहे की सलाई गरम कर लाया। लोगों ने देखा। उसने देखते-देखते नर्तकी के शरीर पर गरम सलाई को दाग दिया। वह बोला—'राजन्! आपकी सभा में कोई आयुर्वेद को जानने वाला दिखाई नहीं देता। आज तो मैं आ गया, नहीं तो यह मर जाती। इसके धनुष्टंकार का रोग हो गया था। मैंने सलाई से दाग दिया और यह सीधी हो गई।'

कुछ लोग नृत्य का आनन्द ले रहे थे, लेकिन वह नृत्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस भील की दृष्टि में धनुष्टंकार से अधिक नहीं था।

क्या कपड़ा पहनना सुख है? सर्दी में कम्बल सुहावनी लगती है और गर्मी में वही अप्रिय हो जाती है। तो फिर प्रश्न है सुख क्या है, जो सुख ही हो, दुःख न हो?

भगवान महावीर ने कहा—जो निर्जीर्ण हो गया है, वह सुख है। जो संस्कार चला गया, वह सुख है। दुःख इससे विपरीत है। जो पाप-कर्म है, वह दुःख है। जो संस्कार बंधा हुआ है, वह दुःख है।

व्यक्ति को गाली सुनने में दुःख की अनुभूति होती है और प्रशंसा सुनने में सुख की अनुभूति होती है।

मेवाड़ के राजा भीमसिंहजी के पास चारण गया और बोला—**'भीमा! तूं तो भाटो, मोटा भाखर मांहिलो'**

राणा भीम! तुम बड़े पर्वत के पत्थर हो। यह सुन राणा कोप में आ गए। चारण ने सोचा, काम बिगड़ गया। तत्काल अगला पद बना दिया—**'कर राखूं काठो, शंकर ज्यूं सेवा करूं।'**

तुम पत्थर तो हो, पर शंकर हो। मैं शंकर की भांति तुम्हारी सेवा करूं। इतने में राणा प्रसन्न हो गए।

एक क्षण में प्रसन्न और एक क्षण में नाराज होना—अपने भाग्य को दूसरों के हाथ में बेचना है। ऐसे लोगों का राजी होना भी भयंकर हो जाता है। थोड़े सम्मान में फूलने वाला अपमान में कुम्हला जाता है। क्या सम्मान और असम्मान भी सुख और दुःख है? नहीं।

तो फिर सुख क्या है? सुख है—समता। लाभ और अलाभ, सुख और दुःख, जीवन और मरण, निन्दा और प्रशंसा तथा मान और अपमान में समभाव रहना सुख है और विषम रहना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुःख है।

साम्यनिष्ठ मनुष्य अनुकूल स्थिति में फूलता नहीं और प्रतिकूल स्थिति में मुरझाता नहीं। वह हर स्थिति में एकरूप रहता है।

'उदये सविता रक्तो, रक्तश्चास्तमये तथा।
संपत्तौ च विपत्तौ च, महतामेकरूपता ॥'

—सूर्य उदयकाल में लाल रहता है और अस्तकाल में भी लाल रहता है। महापुरुष सम्पत्ति और विपत्ति में एकरूप रहते हैं।

यह वस्तु-निरपेक्ष आनन्द है। चाहे दुःख के साधन मिलें, चाहे सुख के साधन मिलें, दोनों में समभाव रहना वास्तविक सुख है।

लोग भगवान से याचना करते हैं—भगवन्! दुःख न आए। यह कैसी याचना! इस दुनिया में जो भी शरीर धारण करेगा, उसे दुःख आएगा ही।

श्रीकृष्ण से कुन्ती ने मांगा—दुःख आए तो सहन करने की शक्ति प्राप्त हो।

मैं देखता हूं, साध्वी बालूजी को काफी वेदना है। जब मैं पूछता हूं कि पीड़ा है क्या, तो कहती हैं—पीड़ा नहीं है। पीड़ा को भी वे समभाव से सहती हैं। उनकी श्रद्धा भिक्षु स्वामी पर है। उन्हीं का हरदम जाप करती हैं। मैंने उनसे कहा—एक मन्त्र का जाप करो—**'आत्मान्यः पुद्गलश्चान्यः'**—आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है। यह बात उनको बहुत जंच गई। मैंने जब कभी पूछा तो यही उत्तर मिला—आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है। जिसको आत्मा का भेदज्ञान हो जाता है, उसे फिर कष्ट नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख क्या है? (२)

'हिंसका अप्युपकृता, आश्रिता अप्युपेक्षिताः।
इदं चित्रं चरित्रं ते, के वा पर्यनुयुञ्जताम् ॥'

भगवान की स्तुति में कहा गया है—जो हिंसक थे, उन पर आपने दया की। जो अधम, डाकू और चोर थे, उन पर कृपा की तथा आश्रितों की उपेक्षा की। यह विचित्र है आपका बरताव।

यह कवि की अपनी कल्पना है, अपना विचार है। महापुरुषों का चरित्र विचित्र होता है। साधारण उन्हें समझ नहीं पाता। गूढ़ तत्त्व को समझना कठिन है।

सारी प्रवृत्तियों के पीछे दो प्रेरणाएं होती हैं—दुःख की मुक्ति और सुख की प्राप्ति। इसके बिना कोई भी प्रवृत्ति नहीं होती। कोई कहे मुझे सुख नहीं पाना है, उसे प्रवृत्ति की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य की प्रवृत्ति आदि से अन्त तक दुःख-निवृत्ति या सुख की प्राप्ति के लिए होती है। सुख क्या है? यह पहले बताया जा चुका है। हर आदमी में संस्कार होते हैं, वे ही उसे दुःखी बनाते हैं। संस्कार क्षीण हो गया, दुःख मिट गया। पुराने जमे हुए संस्कारों व वासनाओं को क्षीण करना सुख है।

उस व्यक्ति की मनोदशा कैसी होती है, जिस पर कर्ज होता है। कर्जदार सोता है तो सिर पर भार लेकर, जागता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कवि? विविधता में विकास हो रहा है। सोचने का ढंग भिन्न होना चाहिए।

आनन्द क्या है?

कल सतियों से पूछा—बताओ, आनन्द क्या होता है? रोटी मिले तब तो ठीक, दो दिन न मिले तब पता लगे कि आनन्द क्या होता है? यदि रोटी, पानी, मकान मिलने से आनन्द है तो वह साधुपन में कहां रहा? आनन्द या सुख क्या होता है?

नारद ने सनत्कुमार से पूछा—**'सुखं नु भगवो जिज्ञासे'**—मैं सुख जानना चाहता हूं।

सनत्कुमार ने उत्तर दिया—**'भूमा सुखं'**। जो अल्प नहीं, व्यापक है, उसका नाम सुख है।

लोग कहते हैं, मोक्ष में सुख मिल जाएगा। वहां सुख क्या है? शरीर नहीं होता, खाना-पीना नहीं होता, चिन्तन नहीं होता, मित्रों की गोष्ठी नहीं होती, कुछ भी नहीं होता। आखिर सुख क्या है? यह जटिल प्रश्न है, और बड़ा प्रश्न है। सहज सुख व सहज आनन्द वह होता है जो वस्तु-निरपेक्ष होता है।

प्यास लगी, पानी मिला, सुख का अनुभव हुआ। रोटी मिली, भूख मिटी, सुख मिला। जेठ मास में पथिक को वृक्ष की ठंडी छाया मिलने से सुख होता है। ये सब सुख वस्तु-सापेक्ष हैं। फिर वस्तु-निरपेक्ष सुख कैसे हो सकता है? सांख्य दर्शन ने सुख पर मीमांसा की है। उसने प्रश्न उठाया—क्या खाना सुख है?

उत्तर में कहा—खाना सुख नहीं है। संस्कृत में भूख का नाम जठराग्नि की पीड़ा है। यह रोज की बीमारी है। नहीं खाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो कल्पना लेकर। रोटी खाता है तो चिन्ता लेकर। हमारे सिर पर संस्कारों का कर्जा है। कर्जदार आदमी सुखी कैसे हो सकता है? कर्ज को चुकाना दुःख से मुक्त होना है। हमारी चेतना पर बहुत सारे आवरण आ गए हैं। वे दुःखी बनाते हैं। उनमें एक है परतन्त्रता का दुःख और दूसरा है स्मृति का दुःख।

परवशता

समाज में परतन्त्रता से बढ़कर कोई दुःख नहीं है। मनुस्मृति में कहा है—'सर्वं परवशं दुःखं, सर्वमात्मवशं सुखम्'—परवशता दुःख है, स्वाधीनता सुख है। स्वाधीन मनुष्य रूखी-सूखी रोटी भी आनन्द से खाता है। पराधीनता में चिकनी-चुपड़ी रोटी भी सुख नहीं देती। नौकर खाने बैठता है, उस समय मालिक बोलता है—पत्र डालकर आओ, तो इच्छा हो या न हो, जाना ही पड़ता है। आत्मा स्वाधीनता चाहती है। ऊपर से बंधन थोपा जाता है। परिस्थितिवश परतंत्र होना पड़ता है। शालिभद्र समृद्धिशाली था। उसके पास अपार सम्पत्ति थी। एक बार का प्रसंग है कि नेपाल के व्यापारी रत्नकंबल को बेचने के लिए चले। रत्नकंबल बहुमूल्यवान् थी। उसकी विशेषता थी कि विशिष्ट जाति के चूहों के रोम से बनी हुई थी, जिसकी धुलाई अग्नि से होती थी। उस समय मगध का नाम चमक रहा था। उस आशा से वे मगध में आए। शहर में घूम रहे थे। लोगों का मन ललचाता था, परन्तु मूल्य सुनकर वे अवाक् रह जाते थे। वे व्यापारी घूमते-घूमते राजा श्रेणिक के पास पहुंचे। मूल्य सुनकर राजा ने उत्तर दिया—मेरा कोष राज्य की सुरक्षा के लिए है, बढ़िया कपड़े खरीदने के लिए नहीं। व्यापारी निराश हो गए। वापस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाते समय वे आपस में बातें करते जा रहे थे कि मगध का नाम सुनकर आए थे, पर यहां कोई खरीदने वाला नहीं मिला। गवाक्ष से झांकती हुई भद्रा सेठानी से उन व्यापारियों को देखा और बातें सुनीं। सेठानी ने सोचा—यह तो हमारे नगर की अवज्ञा है। ये आगे चलकर निन्दा करेंगे। उसमें नागरिकता थी। आज भारतीय नहीं सोचते कि मिलावटी माल भेजेंगे तो भारत की क्या प्रतिष्ठा रहेगी, अपना काम ही बनाना जानते हैं। वे अपने देश के प्रति कुछ नहीं सोचते। जिनके सामने पैसा ही सब कुछ होता है वे चरित्र में दरिद्र हो जाते हैं।

भद्रा ने उन लोगों से पूछा—कहां से आए हो? उन्होंने कहा—नेपाल से। भद्रा ने पूछा—किसलिए? वे बोले—कम्बल बेचने के लिए। भद्रा ने पूछा—कितनी हैं? निराशा में आशा संजोते हुए उन्होंने कहा—सोलह हैं। भद्रा बोली—बत्तीस होतीं तो मुझे खरीदने में सुविधा होती। व्यापारी सन्न रह गए। पहले मोल पूछे बिना कैसे कहा इस प्रकार। वे सोच ही रहे थे कि सेठानी ने मुनीम से कहा—इनकी सब कम्बलें खरीद लो। इधर रानी ने राजा से कहा—एक कम्बल खरीदते तो मेरे काम आ जाती। फिर राजा ने पता लगाया। समाचार मिला कि सभी सोलह कम्बलें खरीद ली गई हैं। राजा ने पूछा—किसने खरीदी, शालिभद्र का नाम बताया। राजा ने सोचा—मेरे राज्य में ऐसे धनी रहते हैं। मुझे मिलना चाहिए। राजा उससे मिलने के लिए उसके घर गया। भद्रा ने शालिभद्र को बताया कि मगध सम्राट आए हैं। शालिभद्र बोला—खरीदकर भीतर रख दो। मां ने कहा—ऐसा मत बोलो—यह अपना स्वामी है। शालिभद्र के कान में 'स्वामी' शब्द चुभा। मेरे पर स्वामी हैं। वह अनमना-सा हो गया। राजा श्रेणिक उसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सौकुमार्य पर मुग्ध हो गया। गोद में बैठाया। शालिभद्र को राजा का स्पर्श कठोर लगने लगा। जब राजा चला गया तो माता ने पुत्र को देखा, वह अनमना-सा लग रहा था। माता ने पूछा—आज ऐसे क्यों हो? क्या सोच रहे हो? पुत्र बोला—जो सोचना था वह सोच लिया। मैंने अपना निर्णय ले लिया है। मां! अपने में जो प्रकाश होता है, दूसरे का स्व बनने में उसका विनाश होता है।

जो शालिभद्र कभी सीढ़ियों से नीचे नहीं आता था, आज वह घर में रहने को तैयार नहीं है। वह प्रव्रजित होकर अकिंचन जीवन जीना चाहता है, स्वतंत्र होना चाहता है।

कोई भी स्वाभिमानी परतन्त्रता को स्वीकार नहीं करता। अपने भाग्य का निर्णय अपने हाथों करना चाहता है। स्वतंत्रता सबसे बड़ा सुख है। कर्म संस्कारों का नाश कर स्वतंत्रता की प्राप्ति करनी है। जो धार्मिक बनता है वह इसलिए कि स्वतंत्र बन सके। आप जानते हैं हम कितनी परतंत्रता का जीवन जीते हैं और कितनी स्वतंत्रता की सांस लेते हैं? शराबी का शरीर टूटने लग जाता है, शराब का समय आते ही उसे शराब चाहिए। अफीमची और गांजा पीने वाले को भी समय पर नशा करना होता है। हमारे जीवन में जाने-अनजाने कितनी परतंत्रता है। क्या हम संस्कारों से बंधे हुए नहीं हैं? दुनिया में ऐसे भी लोग हैं जिनको गाली देने में ही आनन्द आता है, और पीटने में सुख का अनुभव होता है। संस्कारों का बन्धन सचमुच बन्धन है।

विचार के बाद संस्कार बनते हैं। विचार के बाद प्रायश्चित्त करने से संस्कार नहीं बनते। चलते हैं तो चरण-चिह्न अंकित होते हैं। आंधी आने से वे मिट जाते हैं। आंधी न आने पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कई दिनों तक मिट्टी में अंकित रहते हैं। हमारे विचारों के चिह्न शोधन से साफ हो जाते हैं, शोधन न होने से गहरे जम जाते हैं। एक दिन ऐसा आता है कि संस्कार जाग जाते हैं और मनुष्य उनके अधीन हो जाता है। तब आश्चर्य होता है। अमुक ने बुरा काम कैसे कर लिया? बुरे भी कभी-कभी अच्छे काम कर डालते हैं।

धर्म करने का, ध्यान करने का या प्रायश्चित्त करने का प्रयोजन है—संस्कारों के बन्धनों को ढीला करना। संस्कारों की गठरी को लादे फिरना दुःख है। इनको तोड़ना सुख है। आदमी जितना आदतों से परतंत्र है उतना ही दुःख है। वह जितना बाध्यता से मुक्त होता है उतना ही सुख है। जहां संस्कारों के पराधीन होते हैं वहां चाहे-अनचाहे दुःख की सृष्टि हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धार्मिक की कसौटी

धार्मिक की पहली कसौटी है सहिष्णुता, परिस्थिति को सहने की क्षमता। वह कभी नहीं कहता कि मेरे पर दुःख न आए। जो यह मांग करता है, वह कर्तृत्व की हत्या करता है। क्या प्रकृति का नियम बदल जाए? क्या कर्म का नियम बदल जाए? धार्मिक कभी सत्य को उलटना नहीं चाहता।

दुनिया का नाम है द्वन्द्व। संस्कृत में द्वन्द्व शब्द के दो अर्थ होते हैं—'दो' और 'लड़ाई'। दो का होना ही लड़ाई है। इस द्वन्द्वात्मक सृष्टि में जन्म ले और सोचे—दुःख, प्रतिकूल परिस्थिति और कठिनाई न आए, यह कैसे हो सकता है? ऐसा सोचना निरी मूर्खता है।

धार्मिक में भी कठिनाई आए तो धर्म करने का लाभ क्या है? यह प्रश्न हो सकता है? इसका उत्तर बहुत साफ है—धर्म से दुःख को सहने की शक्ति आती है। धार्मिक कष्ट में रोता, विलपता नहीं है, अपितु आनन्द से उसे झेल लेता है। रोग धर्म करने वालों को भी आता है और न करने वालों को भी आता है। बुढ़ापा धर्म करने वालों को भी आता है और न करने वालों को भी आता है। विघ्न धर्म करने वालों को भी आता है और न करने वालों को भी आता है। मौत धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने वालों को भी आती है और न करने वालों को भी आती है। दोनों में फर्क यह पड़ता है कि अधार्मिक रोग में बिलखता है, हाय-हाय करता है, पड़ोसी को भी जगा देता है। दूसरी ओर स्थिति यह है कि रोग चाहे कितना ही भयंकर हो, धार्मिक उसे शांत भाव से सहन कर लेता है। दूसरों को पता चलता कि इसको कष्ट हो रहा है। मैंने देखा कुन्दनमलजी स्वामी को। कालूगणी जोधपुर में चातुर्मास बिता रहे थे। कुन्दनमलजी स्वामी के मस्से में घाव हो गया। डॉक्टर ने कहा—चीरना होगा। चौथमलजी स्वामी कैंची से चीरने लगे। बिना सुंघनी के वे मूर्ति की तरह बैठे रहे। कहने लगे—चौथमलजी! काटना हो जितना एक साथ काट लो। शांत भाव से सहन करने की शक्ति कहां से आती है? जिसमें यह भेदज्ञान हो जाता है कि आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है, उसमें सहने की शक्ति बढ़ जाती है।

मैंने अपनी माता साध्वी बालूजी से कहा—माला जपती हो, यह तो ठीक है। इसके साथ थोड़ा और जोड़ दो—आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है। इस मंत्र को उन्होंने अच्छे ढंग से पकड़ लिया। जब कभी मैं जाता और पूछता—'कैसी हैं?' तो यही उत्तर मिलता—'मेरे कोई बीमारी नहीं है, बिलकुल ठीक हूं, परम शान्ति है।' मैंने फिर कहा—'बीमरी को बीमारी न कहना क्या असत्य नहीं है?' उन्होंने उत्तर दिया—'नहीं है। आत्मा में शांति है, बीमारी शरीर को है, मेरे नहीं है।'

वह साध्वियों से कहती हैं—अब तुम्हारा-हमारा सम्बन्ध नहीं है, तुम तुम्हारे और मैं अपने में।

धर्म की मूलभित्ति यही है कि आत्मा और शरीर को भिन्न समझ लेना। एक आचार्य ने लिखा है—'आज तक जितने सिद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए हैं, वे सब भेद विज्ञान के द्वारा हुए हैं और जो बद्ध हैं वे भेद विज्ञान के अभाव में हैं। जिसमें आत्मा के प्रति गहरी निष्ठा जाग जाती है, उसे दुनिया भी नहीं झुका सकती। उसे मौत का भय नहीं सताता।'

एक भाई बोला—'मुझे मरने से डर बहुत लगता है। जब यमुना के पुल पर जाता हूं तब मन में आता है कि पुल गिर न जाए।' मैंने कहा—'तुम दुबले-पतले हो, तुम्हारे वजन से यह पुल कैसे गिर जाएगा, जबकि भारी ट्रकें भी इस पर चलती हैं?' वह फिर बोला—'घर से बाहर निकलता हूं तो मन में आता है, मोटर के नीचे न आ जाऊं। रात को सोता हूं तो मन में आता है, कहीं छत न गिर जाए।'

कायर आदमी दिन में सौ बार मरता है। मौत का भय उसे होता है, जिसे शरीर का मोह है। जिसने शरीर को भिन्न मान लिया, उसे मौत का भय नहीं सताता।

सम्राट् सिकन्दर यूनान जाने लगा तो सोचा, एक योगी को साथ लेकर जाऊंगा जो यूनान में धर्म की शिक्षा देगा। एक तपस्वी सूर्य की ओर ध्यान किए बैठा था। सम्राट् पास जाकर खड़ा हो गया। सिकन्दर ने थोड़ी प्रतीक्षा की, फिर कहा—'देखिए, कौन खड़ा है सामने?' तपस्वी ने आंखे खोलीं और कहा—'हट जाओ—सूर्य का ताप आ रहा है, उसमें बाधक मत बनो।' सिकन्दर बोला—'सामने कौन खड़ा है, पता है आपको? सम्राट् सिकन्दर है, जिसने सारे विरोधियों को कुचल दिया है। क्या आपको भय नहीं है?' तपस्वी बोला—'सम्राट् मेरा क्या कर सकता है?' वह मारने से अधिक क्या कर सकता है? मरने से मेरा अपना क्या जाता है?' सिकन्दर कुछ नहीं बोला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमस्कार कर चला गया।

यह दृष्टि उसमें होती है, जिसने भय को जीता है। भय वही जीत सकता है, जिसने नश्वर शरीर में अविनश्वर आत्मा को देखा है।

'आत्मा भिन्न, शरीर भिन्न है, तुमने मन्त्र पढ़ाया।
आत्मा अचल अरुज शिव शाश्वत, नश्वर है यह काया।
आत्मा आत्मा के द्वारा ही आत्मा में लय पाए।
चैत्यपुरुष जग जाए ॥'

आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है—यह एक छोटा-सा मन्त्र है। इस भेदविज्ञान को सिद्ध कर लेना अनेक व्याधियों से मुक्त होना है।

कुछ वर्ष पहले एक जैन श्रावक मिला। उसने बताया—मेरे टी॰ बी॰ हो गई थी। तीसरे दर्जे तक पहुंच गई थी। डॉक्टर ने कहा—इसकी कोई दवा नहीं है, कुछ दिन और जीओगे। मैंने सब चिकित्सा को छोड़ केवल ध्यान शुरू किया। आत्मा और शरीर के भेदज्ञान का ध्यान किया। एक मास के बाद डॉक्टर के पास गया। निरीक्षण कर डॉक्टर ने कहा—रोग कुछ नहीं है। टी॰ बी॰ समाप्त है। क्या दवा ली थी? रोग कैसे मिटा? मैंने भेदज्ञान की बात बताई। यह बात डॉक्टर के समझ में आने वाली नहीं थी। क्योंकि वे कीटाणुओं से बीमारी मानते हैं। किन्तु यह सही बात है कि बीमारी चली गई। मैंने स्वयं दूसरे लोगों को बताया। उनको भी लाभ हुआ।

भेदविज्ञान से न केवल आत्मिक शक्ति जागती है, बल्कि व्यावहारिक जीवन को भी शक्ति मिलती है। ममत्व कम होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है और मौत का भय नहीं सताता। ममत्व-विसर्जन से जो ताकत पैदा होती है, वह बटोरने से नहीं मिलती।

आत्मा भिन्न है, पुद्गल भिन्न है, यह आत्मसाधना का मन्त्र है। पूज्यपाद की भाषा में—**'जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः इत्यसौ तत्त्व-संग्रहः—'** आत्मा भिन्न है और पुद्गल भिन्न है, यही तत्त्व है।

जिसने आत्मा को समझ लिया, उसने परमात्मा को समझ लिया।

जिसने आत्मा को समझ लिया, उसने बन्धन को समझ लिया।

जिसने आत्मा को समझ लिया, उसने बन्धन के हेतु को समझ लिया।

जिसने आत्मा को समझ लिया, उसने संवर को समझ लिया।

जिसने आत्मा को समझ लिया, उसने संवर के हेतु को समझ लिया।

जिसने आत्मा को समझ लिया, उसने निर्जरा को समझ लिया।

जिसने आत्मा को समझ लिया, उसने मोक्ष को समझ लिया।

जिसने आत्मा को समझ लिया, उसने दुःखों को समझ लिया।

जिसने आत्मा को समझ लिया, उसने दुःख-मुक्ति के उपायों को समझ लिया।

आत्मा को समझे बिना धर्म का बोध नहीं होता।

देव, गुरु और धर्म—ये तीन धर्म के मूल हैं।

देव कौन है? आत्मा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु कौन है? आत्मा।

धर्म क्या है? आत्मा।

आत्मा को छोड़ दीजिए—देव देव नहीं रहेगा, गुरु गुरु नहीं रहेगा, धर्म धर्म नहीं रहेगा। देव में देवत्व आता है आत्मा से। आत्मा जागृत होने से महावीर हमारे देव हो गए। गुरु गुरु हो जाता है जब हमारी आत्मा जागृत हो जाती है। जब बाहुबली से कहा गया कि भरत तुम्हारा बड़ा भाई है, उसका विनय करो, तो बाहुबली ने कहा—

'गुरौ प्रशस्यो विनयो, गुरुर्यदि गुरुर्भवेत्।
गुरौ गुरुगुणैर्हीने, विनयोपि त्रपास्पदम् ॥'

दूत! भरत से कह देना—गुरु के प्रति विनय करना प्रशंसनीय है, यदि गुरु वास्तव में गुरु हो। यदि गुरु बड़प्पन से हीन हो तो उसके सामने विनय करना लज्जाजनक है।

भरत की आत्मा जागी नहीं है। यदि जाग जाती तो वह अट्ठानवे भाइयों को लूटता नहीं। बड़े चाहते हैं, छोटे हमारा सम्मान करें। बिना गुरुत्व के पूजा चाहना सरल है, किन्तु पूजा को पचाना कठिन है। बड़प्पन को पचाना जटिल कार्य है। उसे वही पचा सकता है जिसने आत्मा को समझा है। भगवान महावीर ने कहा है—आत्मवान् के लिए पूजा, प्रतिष्ठा लाभकर है और अनात्मवान् के लिए हानिकर है। आत्मवान् सोचता है—कहीं मेरे द्वारा ऐसा कार्य न हो जिससे पूजा करने वालों को धोखा मिले। अनात्मवान् ऐसा नहीं सोचता।

आत्मा को निकाल देने पर भगवान का सारा धर्म समाप्त हो जाएगा। यदि धर्म को रखना है तो आत्मा की सुरक्षा करनी होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रामाणिकता का मूल्य

'तिष्ठेद् वायुः द्रवेदद्रिः, ज्वलेत् जलमपि क्वचित्।
तथापि ग्रस्तो रागाद्यैर्नाप्तो भवितुमर्हति ॥'

भगवन्! आप आप्त हैं इसलिए मैं नमस्कार करता हूं। तर्कशास्त्र का एक शब्द आप्त है, आप्त यानी प्रामाणिक। सत्य बोलने वाले का हर व्यक्ति विश्वास कर सकता है। आप्त कौन? जो राग-द्वेष से ग्रस्त नहीं है। आचार्य ने लिखा है—वायु हमेशा चलती है, कभी वह भी ठहर जाए; पहाड़ कठोर होता है, कभी वह भी तरल हो जाए; पानी ठंडा होता है, कभी वह भी जलने लग जाए; यह सब हो सकता है, पर राग-द्वेष से ग्रस्त कभी आप्त नहीं हो सकता।

दुनिया में सबसे बड़ी चीज है प्रामाणिकता। जिसमें प्रामाणिकता नहीं, वह धार्मिक नहीं हो सकता। धर्म का मूल है—प्रामाणिकता, सचाई। भगवान महावीर ने कहा—'सच्चं भयवं' सत्य ही भगवान है। जैसा कहना वैसा ही आचरण करना, सत्य है। तराजू कभी पक्षपात नहीं करता। मीटर से कपड़े का नाप ठीक मिलता है। घड़ी से अप्रामाणिकता न चाहने वाला यदि अपने जीवन में अप्रामाणिकता बरतता है, तो वह कितना बड़ा धोखा है। जिसने धर्म को थोड़ा-बहुत समझा है, वह अपने जवीन में प्रामाणिकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाएगा। भगवान महावीर ने प्रामाणिकता को स्थान देते हुए नियम बनाए। साधु गृहस्थ के घर से नख काटने के लिए कतरनी मांगकर लाता है, तो वह उससे कपड़ा नहीं काट सकता, क्योंकि उसको नख काटने के लिए कहकर लाया है। बीमारी के नाम से मांगकर लाई गई वस्तु वही खा सकता है, दूसरा नहीं। गृहस्थ कहे कि चाय ले जाओ, अमुक साधु को पिला देना। इस वचन से लाई गई चाय वही पी सकता है। वह यदि न पीए तो दूसरा उसको नहीं पी सकता। उसको परठणा (विसर्जित करना) ही पड़ता है। ऐसे अनेक नियम हैं जो प्रामाणिकता के आधार पर हैं।

प्रामाणिकता के बिना विश्वास नहीं बढ़ता। हम लोग बृहद्कल्प का स्वाध्याय कर रहे थे। उसमें एक कथा आई—एक व्यक्ति शिकार खेलने गया, उसके साथ एक शिकारी कुत्ता था। शिकारी ने छि-छि किया और वह कुत्ता दौड़ा, मृग को मार डाला। दूसरी बार शिकारी ने छि-छि किया कुत्ता फिर दौड़ा पर कोई शिकार नहीं मिला, निराश होकर कुत्ता वापस आ गया। तीसरी बार भी शिकारी ने परीक्षा के लिए छि-छि किया। कुत्ता दौड़ा पर कोई नहीं मिला। चौथी बार छि-छि किया तो कुत्ता नहीं दौड़ा, उसके मन में सन्देह हो गया, विश्वास मिट गया। जहां धोखा मिलता है वहां प्रामाणिकता नहीं रहती। धोखा खाने वाला एक-दो बार ही खाता है, फिर वह नहीं खाता। आज हर क्षेत्र में अप्रामाणिकता स्थापित हो रही है। सूत्रकृतांग में भगवान महावीर ने कहा है—**'मा अप्पेण लुंपहा बहुं'**—थोड़े के लिए ज्यादा को मत गंवाओ।

दो प्रकार की नीति होती है—अल्पकालीन और दीर्घकालीन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदमी के मन में लालच होता है, वह एक साथ में सारा लेना चाहता है—यह अल्पकालीन नीति है। जो व्यापारी दीर्घकालीन लाभ की कामना करता है, वह व्यापार में अप्रामाणिक नहीं रहता। क्या वह व्यापार में इसलिए अप्रामाणिकता नहीं करता कि वह परलोक बिगाड़ना नहीं चाहता? वे जानते हैं, सफल व्यापारी वही हो सकता है जो प्रामाणिकता से व्यापार करता है। जो अप्रामाणिकता से व्यापार करता है वह एक बार लाभ कमा सकता है परन्तु अन्ततः असफल होता है। प्राचीनकाल में भी जिन लोगों ने प्रामाणिकता को प्राथमिकता दी, उनका विश्वास जमा है।

भैंसाशाह नामक एक जैन व्यापारी थे, वे बड़े धनी थे। जितने बड़े धनी थे उतने ही प्रामाणिक थे। उनकी ख्याति सब जगह फैल गई थी। व्यापारियों में उनके नाम की प्रतिष्ठा थी। एक बार वे अहमदाबाद गए। रुपयों की आवश्यकता हुई। बाजार में गए। एक व्यापारी से कहा—'मुझे एक लाख रुपये चाहिए।' व्यापारी ने परिचय पूछा तो साथ के एक भाई ने परिचय दिया—'आप भैंसाशाह हैं।' व्यापारी ने पूछा—'क्या आप रखना चाहते हैं?' भैंसाशाह ने तत्काल अपनी मूंछ का एक केश उखाड़ा और कहा—'यह लो, अपनी दुकान पर रख लो।' उनके नाम की प्रतिष्ठा थी। तत्काल व्यापारी ने एक लाख रुपये दे दिए। भैंसाशाह रुपये लेकर चले गए। अवधि से पहले भैंसाशाह ने रुपये भेजकर अपना बाल (केश) वापस मंगा लिया।

उस समय आदमी समझते थे कि जो जबान से कह दी, वह लिखने से भी अधिक है। पैसे का मूल्य कम था, जबान का मूल्य अधिक था। प्रामाणिकता का यह एक चित्र है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा चित्र है आज के भारत का, जो धार्मिक देश कहलाता है। जहां मंदिर, मठ, उपाश्रय हजारों-हजारों हैं, गीता का पाठ करने वाले हैं, त्रिपिटकों का पाठ करने वाले हैं, वहां अप्रामाणिकता भयंकर रूप में है। कुछ वर्ष पहले की घटित एक घटना है। एक आदमी गांव से घी लेकर आया; दूसरा व्यक्ति शहरी था, उसने घी को देखा तो ठीक लगा। वह घी बेचना चाहता था और यह लेना चाहता था। उसने बर्तन सहित घी को तोल लिया। बदले में अनाज भरा एक बड़ा बर्तन दे दिया। गांव वाला वापस जाते समय सोचने लगा—मैंने शहरी को ठग लिया। घर गया। बर्तन से अनाज निकाला। ऊपर अनाज; नीचे कंकर निकले। वह सोचने लगा—बनिया ठग जाति होती है। उधर उस शहरी ने घी उंडेला तो ऊपर घी, नीचे गोबर निकला। उसने सोचा—मैं ठग गया। वास्तव में दोनों ठगे गए।

आज आदमी एक-दूसरे को ठग रहा है। लाभ किसी को नहीं है। मिलावट करने वाला व्यापारी जब दूध लेने जाता है तो माथा ठनकता है, कितना कलिकाल है, दूध भी शुद्ध नहीं मिलता। जब वह स्वयं मिलावट कर बेचता है तब वह नहीं सोचता, मैं क्या कर रहा हूं? हर आदमी दूसरे को ठगना चाहता है और स्वयं ठगा जा रहा है। दवाई भी मिलावटी मिलती है। एक घर में मिलावट का इन्जेक्शन आया। उससे उसकी लड़की मर गई, तब उसे पता चला कि यह तो मेरी ही कम्पनी का इन्जेक्शन था।

जहां समाज इतना पतित हो जाता है कि कोई भी चीज शुद्ध नहीं मिलती, वहां मन शुद्ध कैसे रहेगा? उसके बिना धर्म की आराधना कैसे कर पाएंगे? जो व्यक्ति अप्रामाणिकता से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार करता है वह एक बार सफल हो सकता है परन्तु आगे के लिए काम रुक जाता है। पश्चिमी जगत् में व्यवहार शुद्धि और नैतिकता पर बल दिया गया है।

धर्म और नैतिकता में भेद है। नैतिकता एक में नहीं होती जबकि धर्म एक में हो सकता है। दूसरा दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करता है, यह नैतिकता का क्षेत्र है। आप ध्यान, सामायिक आदि अकेले कर सकते हैं पर नैतिकता नहीं। नैतिकता द्विष्ठ होती है, दो से सम्बन्ध रखती है।

नैतिकता हमारे धर्म का प्रतिबिम्ब है। जिसके जीवन-व्यवहार में शुद्धि न हो तो समझना चाहिए, जीवन में धर्म नहीं आया।

आज धर्म का चक्का उल्टा हो गया है। पहले नैतिक होना चाहिए फिर धार्मिक। आज हो यह रहा है कि आदमी धार्मिक तो जन्म से ही हो जाता है परन्तु नैतिक मौत तक नहीं बन पाता। इसलिए धर्म की विडम्बना हो रही है। मन्दिर में भक्ति करते हुए सेठ को देखकर एक व्यक्ति ने कहा—क्या यह वही है जो कल ठग रहा था। इस दो प्रकार के व्यक्तित्व ने ही भारत की आत्मा को नष्ट कर दिया है। आज धर्म को अस्वीकार करने वाले कुछ लोग जितने नैतिक व धार्मिक लगते हैं, उतने तथाकथित धार्मिक भी नहीं लगते। आज धर्म के लिए नई क्रान्ति की आवश्यकता है। कुछ लोग कहते हैं, भाइयों को सामायिक करने का नियम दिलाइए, दर्शन करने का नियम दिलाइए, हरित खाने का त्याग दिलाइए। सब सुझाव देते हैं। मेरे मन में इतना उत्साह नहीं है। मैं देखता हूं साधुदर्शन, मालाजाप, सामायिक आदि सब अच्छे हैं। सामायिक को मैं सबसे उत्कृष्ट धर्म मानता हूं, जिसमें समता की साधना होती है। इनसे पहले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म है प्रामाणिकता, सचाई। यदि बच्चों में नैतिकता नहीं जागी तो ये विडम्बना मात्र रह जाएंगी। बिना नींव का मकान होगा।

जिसमें प्रामाणिकता नहीं है, वह सच्चा धार्मिक नहीं होता और अच्छा नागरिक भी नहीं होता। प्रामाणिकता धार्मिक बनने के लिए ही नहीं, अच्छे सामाजिक और सफल व्यापारी बनने के लिए भी आवश्यक है। एक संकल्प करना है—'इयाणिं नो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं'—अब मैं वह भूल नहीं करूंगा जो मैं आज तक अज्ञानवश और प्रमाद से कर रहा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म का व्यावहारिक मूल्य

'तथा परे न रज्यन्ते, उपकारपरे नरे।
यथापकारिणी भवान्, स्वामिनिदमलौकिकम् ॥'

भगवन्! दूसरे लोग उपकार करने वाले का ध्यान नहीं रखते जितना कि आप अपने अपकार करने वाले का रखते हैं। उपकारी का ध्यान रखना स्वाभाविक है। आप अपकारी पर जितना ध्यान देते हैं, उतना उपकारी पर भी नहीं रखते।

संगम ने भगवान को बहुत कष्ट दिया। साधारण आदमी तो कष्ट देने पर सोचता है, कितना नीच है, तुच्छ है, मुझे कष्ट दे रहा है। भगवान ने सोचा—मेरे निमित्त से संसार का उद्धार हो रहा है, पर यह मेरे निमित्त से डूब रहा है। उसकी चिन्ता की। आप अपकारी पर ध्यान देते हैं। यह आपकी अलौकिकता है।

लौकिक और लोकोत्तर दो हैं। इहलौकिक में जी रहे हैं, पारलौकिक में जाना है। एक में हैं, एक में जाना है। भगवान महावीर ने एकांगी दृष्टिकोण नहीं दिया। केवल इहलोक भी नहीं, केवल परलोक भी नहीं।

साम्यवाद के सिद्धान्त का पहले पहल मार्क्स ने प्रतिपादन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया था। वह समाजशास्त्री और अर्थशास्त्री था। अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए भटकता रहा। पता चलने पर लोग देश से निकाल देते थे, मकान से निकाल देते थे। जिन्होंने संसार को नया तत्त्व दिया है, उनको उनके ही भक्तों द्वारा अपमान सहना पड़ता है, कभी जहर भी पीना पड़ता है।

सुकरात महान् साधु व तत्त्ववेत्ता था। आज भी पश्चिमी देशों में वह प्रथम कोटि का माना जाता है। उसने वर्तमान रूढ़िगत धारणा के विरुद्ध सत्य की घोषणा की थी, इसीलिए उसको जहर का प्याला पीना पड़ा। ईशु को फांसी पर चढ़ना पड़ा, क्योंकि उन्होंने तत्कालीन धर्म के विरुद्ध बातें कही थीं। भिक्षु स्वामी को भी बहुत सहना पड़ा था।

अयोध्या से प्रकाशित एक पत्र में लिखा था—सब धर्माचार्यो! चेतो। आचार्य तुलसी अणुव्रत के नाम पर सब पर छाए जा रहे हैं। उन्होंने राष्ट्रपति, शिक्षाशास्त्री, मंत्रियों और राजनयिकों को अपने चंगुल में फंसा लिया है। एक दिन ऐसा आने वाला है जब सब धर्मों का अस्तित्व मिट जाएगा और एक ही धर्म रहेगा, वह होगा अणुव्रत।

धीर-पुरुष के सोचने का क्रम है। गाली देता है तो सोचता है—गाली ही दी पीटा तो नहीं। कभी पीटने की नौबत बन जाती है तब सोचता है—प्राण तो नहीं लूटे, केवल पीटा ही।

हमने देवास में देखा। व्याख्यान का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। दो ओर से हल्ला उठा। हल्ला करने वाले पांच-दस ही भाई थे, पर हल्ले से सबका ध्यान खिंच गया। पूज्य गुरुदेवश्री को प्रार्थना की कि आप ऊपर पधार जाएं, क्योंकि पत्थर आने की सम्भावना है। पत्थर आने लगे। निशाना लगाया था सिर पर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु पीठ पर लगा। उस समय गुरुदेव ने कहा—कोई बात नहीं है, इतने से भी काम चल गया। एक भी रोम में प्रतिक्रिया नहीं हुई। हो सकता है कोई पत्थर की जगह गोली मार दे।

प्राण लूटने पर धार्मिक या साधक सोचेगा, प्राण ही लूटा, पर धर्म तो नहीं लूटा। जो धीर पुरुष होता है, वह खैर मना लेता है। यह जो चिन्तन की मनोवृत्ति है, वह साधनाशील या तत्त्ववेत्ताओं में प्राप्त होती है। जिन्होंने दुनिया को कुछ नया दिया है, उन्हें दण्ड ही मिला है।

वैज्ञानिक गेलेलियो ने दूरवीक्षण का आविष्कार किया था। लोगों ने कहा—भगवान की सृष्टि में विरोध उत्पन्न करना शुरू कर दिया है, कहता है आंखों से भी आगे देखो। आखिर उसे मृत्युदण्ड दिया गया। दो-चार शताब्दी तक वैज्ञानिकों को इस कठिनाई का सामना करना पड़ा। धर्माचार्य कहते हैं कि वैज्ञानिक लोग महाप्रभ ईशु की आज्ञा का उल्लंघन कर रहे हैं, फांसी दे दो। आज वैज्ञानिकों का पलड़ा भारी हो गया है और धर्माचार्यों का हल्का। इस स्थिति को आने में चार शताब्दियां लगीं।

आलोचना सुनने में दोष क्या है? पारा ऐसे ही हजम नहीं होता। नग्न सत्य को पचाने की ताकत होनी चाहिए। वह अलौकिक होता है। साधारण आदमी की समझ में आए वह लौकिक, जो न आए वह अलौकिक होता है। आज धर्म के क्षेत्र में गड़बड़ी है। उसका कारण है—अलौकिक पर जितना ध्यान दिया, उतना लौकिक पर नहीं। समाज में भी गड़बड़ी का कारण है—जितना ध्यान लौकिक पर दिया उतना अलौकिक पर नहीं दिया। मार्क्स का चिन्तन था—समाज के छोटे लोगों के हाथ में सत्ता नहीं आएगी तो वर्ग-संघर्ष समाप्त नहीं होगा। पूंजीपति या सत्तालोलुप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगों के हाथ में सत्ता रहेगी तो सर्वहारा वर्ग का कल्याण नहीं होगा। इस दिशा में मार्क्स ने आश्चर्यपूर्ण कार्य किया। दुनिया का आधा भाग साम्यवादी बन गया। सब सम्पत्ति सरकार की है। उद्योग, कृषि, व्यापार सब राष्ट्र की सम्पत्ति है। चिकित्सा सबको मुफ्त प्राप्त है। भिखारी भी नहीं है, वेश्या भी नहीं है। लोगों को सोचना पड़ता है, कर्मवाद कहां है? आज की दुनिया इतनी छोटी हो गई है कि चौबीस घंटों में एक छोर से दूसरे छोर तक पहुंचा जा सकता है। ऐसी स्थिति में दूसरे देशों की परिस्थिति से अनभिज्ञ नहीं रहते। इतना काम मार्क्स ने किया। एक प्रकार से दुनिया का नक्शा बदल दिया। एक बात की कमी न होती तो साम्यवादी व्यवस्था वरदान बन जाती। व्यक्ति के उपासना पक्ष को गौण कर दिया और धर्म को स्थान नहीं दिया—यही कमी है।

भारत में समाज की जो व्यवस्था है, उसमें सैकड़ों भूखे मर रहे हैं। दस करोड़ से ज्यादा लोगों को पूरा भोजन भी नहीं मिलता। डॉ. लोहिया ने दिल्ली में मुझसे कहा—मुनिजी! आप गांव में मेरे साथ चलिए और देखिए, अहिंसा-प्रधान देश में कितनी क्रूरता होती है। जीवित कछुए को काट-काटकर बेचा जाता है। ऐसा निर्दयतापूर्ण व्यवहार दुनिया में कहीं नहीं है। मुम्बई में कई पश्चिमी लोग धर्म-प्रधान भारत को देखने आए थे। उन्होंने देखा—एक मुर्दा-सा घोड़ा तांगे को खींच रहा है जिस पर इतने आदमी बैठे हैं कि घोड़ा दबा जा रहा है, फिर ऊपर से चाबुक की मार और। वे भाई पूज्य गुरुदेवश्री के पास आए और बोले—हम धर्म को सीखने आए थे, पर बाजार में लोगों को देखा तो हमारी भावना ही बदल गई। हमने सोचा—वापस चला जाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। मेरे देश में ऐसा करने वाला जेल में मिलेगा।

भगवान महावीर के पहले अहिंसा अणुव्रत के पांच अतिचार में एक अतिचार है—पशुओं पर ज्यादा भार लादा हो, क्रूर व्यवहार किया हो तो मिच्छामि दुक्कडं वाणी से कह देते हैं पर जीवन में उतरना चाहिए क्या कर तो लेते हैं नौकर, पुत्र और बहुओं के साथ क्रूर व्यवहार नहीं होता जो बहू पीहर से कम धन लाती है, उस पर गाली की बौछारें होती हैं।

दिल्ली के ज्योति प्रसाद जैन मेरे पास आए। बैठ गए। मैंने कहा—'आए नहीं, क्या बात है?' बोले—'बहुत दुःखी हूं। क्या कहूं!' आंखों में आंसू आ गए। फिर पूछा—'आप जैसे गम्भीर क्यों घबरा गए?' मेरी लड़की ग्वालियर ब्याही है, दहेज कम दिया। जब ससुराल गई तो गालियां मिलीं। वह सहती गई, फिर मारपीट हुई। सास पीटती, ससुर भी पीटता। सब पीछे पड़ गए। उसका अपराध यही था कि दहेज कम लाई थी। अब समाचार आया कि उसे मार डाला गया है।'

यह किस समाज में हुआ। यह उस समाज में घटित हुआ है? जो धर्म-परिवार है, अपने को जैन मानता है। एक ओर पश्चिमी देश हैं, वे धर्म को नहीं मानते। वहां ऐसी घटना नहीं मिलेगी। व्यवस्था में उन्होंने आधुनिक परिवर्तन कर दिया है। यहां गाय-भैंसों के बैठने का स्थान है, उसे साफ करना आवश्यक नहीं समझते। पश्चिमी लोग गाय-भैंसों के बांधने का जो स्थान है वहां सफाई रखते हैं। उन्हें स्नान कराते हैं, उनके लिए पंखा रखते हैं। उन्होंने आविष्कार किया कि गाय-भैसों को संगीत सुनाने व आराम देने से दूध ज्यादा मिलता है। दुहने के समय उन्हें मधुर गाने सुनाते हैं। उन्होंने ध्यान दिया कि चाहे पशु-पक्षी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नौकर-चाकर कोई भी हो, उसे जितना दुलारा जाएगा, उतना ही अच्छा फल मिलेगा। यहां बच्चा रोता है तो उसे गाली देना शुरू कर देते हैं। बच्चा और कुछ सीखे या न सीखे, गाली देना तो सीख ही जायेगा। माता पीटना भी शुरू कर देती है। यहां सारी उल्टी धारा है। वहां प्रेम की धारा है, यहां आक्रोश की धारा है। वहां प्रेम दिया जाता है। जहां प्रेम दिया जाता है, उसके साथ कुछ भी दिया जा सकता है। दूसरी वस्तु कितनी ही दें, यदि प्रेम नहीं देते हैं तो कुछ नहीं है।

नौकर को भी प्रेम देकर उसके हृदय को जीत सकते हैं। बलात् या गाली से उसका हृदय नहीं मिलता। अहिंसा अणुव्रत में 'सिंह नहीं मारूंगा' इस त्याग के स्थान पर 'किसी नौकर को गाली नहीं दूंगा, उसकी आजीविका का विच्छेद नहीं करूंगा।' यह नियम लेंगे तो वर्तमान में व्रतों का प्रभाव पड़ेगा। व्रतों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ना चाहिए। धर्म करने के दृष्टिकोण को बदलना है। एकांगी दृष्टिकोण न बनाएं। इहलोक और परलोक दोनों को सुधारना है। इस प्रकार धर्म का दृष्टिकोण बनने से व्यक्ति सुधरेगा और समाज सुधरेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक धर्म

'देहप्रसादो रसनाजयेन, मनःप्रसादः समताश्रयेण।
दृष्टिप्रसादो ग्रहमोचनेन, पुण्यत्रयीयं मम देव! भूयात् ॥'

प्रभो! रसना-विजय के द्वारा मेरा शरीर प्रसन्न रहे। समता के द्वारा मेरा मन प्रसन्न रहे, आग्रह-मोचन के द्वारा मेरी दृष्टि प्रसन्न रहे। प्रभो! यह पुण्यत्रयी सदा मेरे साथ रहे।

जो समता का आस्वाद नहीं लेता, उसका मन प्रसन्न नहीं रहता। सामायिक मन को प्रसन्न करने का अपूर्व साधन है।

राजसमन्द में मेरे पास पांच-सात वकील बैठे थे। उनमें एक वकील सामायिक नहीं करता था। उसका उसमें विश्वास भी नहीं था। परम्परा से वह जैन अवश्य था। मैंने उससे पूछा—'सामायिक क्यों नहीं करते?'

उसने कहा—'मेरा विश्वास नहीं है।'

मैंने बताया—'जो सामायिक नहीं करता, वह सच्चा साम्यवादी भी नहीं होता (वह भाई साम्यवादी था)। सामायिक का अर्थ मुंह पर पट्टी बांधना ही नहीं है। सामायिक का अर्थ है—समता की साधना। सामायिक भगवान महावीर के समूचे धर्म का सार या निष्पंद है। समता को छोड़ने पर महावीर के धर्म में शून्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहेगा। आदि से अन्त तक सारा धर्म सामायिक है।

सामायिक तीन प्रकार की होती है—श्रुत सामायिक, दर्शन सामायिक और चारित्र सामायिक।

श्रुत सामायिक

जो क्षण हमारे शान्ति के बीतते हैं, वह सामायिक है। तत्त्व की अन्वेषणा, सत्य की खोज और आत्मा को जानने का प्रयत्न करते हैं, वह सब सामायिक है।

'कोऽहं' मैं कौन हूं? जो मनुष्य है, वह एक दिन समाप्त होने वाला है; ये बच्चे, जवान और बूढ़े कुछ वर्षों के लिए हैं; पुद्गल कभी नहीं मिटते, जितने हैं उतने ही रहेंगे; केवल अवस्था-परिवर्तन होता है। संसार में जीव और अजीव जितने थे, उतने ही रहेंगे और उतने ही हैं। सबका अस्तित्व असंदिग्ध है। मनुष्य ही एक ऐसा अभागा प्राणी है जो अपने अस्तित्व में सन्देह करता है और वह यह सोचता है कि कौन जाने परलोक है या नहीं?

प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर कोई नहीं कह सकता कि परलोक है या नहीं, फिर भी अशुभ आचरण नहीं करना चाहिए। एक कवि ने कहा है कि परलोक के संदिग्ध होने पर भी अशुभ आचरण त्याज्य है। यदि वह नहीं है तो अशुभ के त्याग से कोई हानि नहीं होगी और यदि है तो बेचारा नास्तिक मारा जाएगा।

'संदिग्धेपि परे लोके, त्याज्यमेवाशुभं बुधैः।
यदि नास्ति ततः किं स्यादस्ति चेत् नास्तिको हतः॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोधपुर के मुसद्दी बच्छराजजी सिंघी डालगणी के पास आए और बोले—'मुझे आप पर तरस आता है। आप लोग सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास सब सहते हैं। बिना मतलब कष्ट सहते हैं, आगे-पीछे कुछ नहीं है।' डालगणी ने उत्तर दिया—'कष्टों के लिए हम साधना नहीं करते हैं। साधना में कष्ट आए, उसे सहना हमारा धर्म है। संयम अच्छा है, वर्तमान में भी और भविष्य में भी। अगर तुम्हारा सिद्धान्त फलित हुआ तो हमने जो कष्ट सहा, वह व्यर्थ हो गया। अगर हमारा सिद्धान्त सही निकला तो तुम्हारा क्या होगा?' बच्छराजजी बोले—'इतनी मार पड़ेगी कि धरती भी नहीं झेलेगी।'

यदि परलोक नहीं है तो कष्ट सहा, वह ऐसे ही गया। यदि परलोक हो गया तो नास्तिक तो ऐसे ही मारे जाएंगे। गहराई से ऐसा चिन्तन करना भी श्रुत सामायिक है।

आप सारे काम करते हैं। चार बजे उठते हैं। आवश्यक कार्य से निवृत्त हो सामायिक करते हैं, व्याख्यान सुनते हैं, भोजन करते हैं सोते भी हैं, बातें करते हैं। ताश-चोपड़ भी खेलते हैं। समय हो तो आलोचना भी कर लेते हैं। आलोचना करना भारतीय जीवन की चर्या का मुख्य अंग बन गया है। दूसरों की बात करना निकम्मापन है। जो काम में व्यस्त रहते हैं, वे बात नहीं करते। मुम्बई में दो फ्लैटों में रहने वाले एक-दूसरे को वर्षों तक नहीं जानते। अपने से अपना काम करते हैं। बिना बात किए यहां दिन बीते तो कैसे बीते!

शाम को भोजन करते हैं, इधर-उधर घूमकर आ जाते हैं। रात को सो जाते हैं। इस दिनचर्या में तत्त्व-चर्चा के लिए स्थायी समय नहीं है। लोगों से कहा जाता है, अध्ययन कीजिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर मिलता है, समय नहीं है। काम करने वाला कभी नहीं कहता, समय नहीं है। प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू से पूज्य गुरुदेवश्री पूछा—'आपको पढ़ने का समय मिलता है क्या?' 'हां!' 'कब?' 'जब सोता हूं।' प्रधानमन्त्री को भी समय मिलता है, पर आप लोगों को नहीं मिलता।

पुरानी घटना है, सम्राट् भरत चक्रवर्ती थे। इतना बड़ा राज्य था फिर भी निश्चिंतता थी। उसके यहां मंगलपाठक रहते थे। 'वर्धते भयं'—यह मंगलपाठ एक मुहूर्त तक चलता रहता था। भरत ने स्वयं उनको नियुक्त किया था। 'वर्धते भयं'—यह मंगलपाठ मुझे सुनाएं जिससे मैं प्रमाद में न फंसूं। क्या हम निर्भय हो गए जो सोचने की आवश्यकता ही नहीं समझते? थोड़ा-बहुत समय लिखने-पढ़ने और चिन्तन में लगाना चाहिए। जो अपने बारे में नहीं सोचते, वे भयंकर भूल करते हैं। उन लोगों ने दूसरों को ज्यादा कष्ट पहुंचाया, जो स्वयं नहीं सोचते।

अपने को जानो, अपने आपको पहचानो। जो अपने को जान लेता है, वह सबको जान लेता है। आचार्य कुंदकुंद ने केवली की परिभाषा की है—जो अपने आपको जान लेते हैं वे केवली हैं। केवली सबको जानता है, यह व्यवहार की बात है। निश्चय में वह अपनी आत्मा को ही जानता है।

जो एक को जानता है, वह सबको जानता है। अपने आपको तभी जान सकते हैं जब अपने से भिन्न को भी जानेंगे। दूसरों को बिना जाने एक को कैसे जाना जा सकता है? अस्तित्ववाद ने विद्यार्थी जगत् को प्रभावित किया है। वह कहता है, जब तक अपने अस्तित्व को नहीं जानते तब तक कुछ नहीं जानते। हर व्यक्ति को अपने बारे में ही सोचना चाहिए। जिसने स्वयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिए सोचा, उसने भाग्य की कुंजी अपने हाथ में ले ली।

इसकी चर्चा हम 'सम्यक्दृष्टि' के अन्तर्गत कर चुके हैं।

चारित्र सामायिक

हमारे आचरण में समता आए। परिवार में समता का प्रयोग हो। आनन्द आएगा। पिता के चार पुत्र हैं। एक पर मोह करे और जो देना चाहे उसे ही दे तो घर में कलह हो जाएगा। सामायिक को रूढ़ मत बनाइए। सामायिक करने वाला किसी के साथ असमानता का व्यवहार नहीं करता। वह दूसरे के हक को नहीं छीन सकता। सामायिक का प्रतिबम्ब हमारे सामान्य जीवन में आना चाहिए।

भिक्षु स्वामी ने तेरापंथ का विधान लिखा। उसकी विशेषता है कि उन्होंने समता को विधान का मूल आधार बनाया। एक पढ़ा-लिखा साधु है, दूसरा केवल संयम पालन करने वाला है। भिक्षा में यदि एक रोटी आती है तो दोनों साधु आधी-आधी कर लो। साधु सोते हैं, उसका भी क्रम है। हर वस्तु की मर्यादा है।

सामायिक करने वाले सोचते हैं—सामायिक करेंगे तो परलोक सुधरेगा। वर्तमान यदि कलह, झगड़े में बीतता है तब परलोक कैसे सुधरेगा? सामायिक के समय शान्ति मिलनी चाहिए। उसका प्रभाव सारे दिन रहना चाहिए। हमने धर्म को काल-प्रतिबद्ध और क्षेत्र-प्रतिबद्ध बना दिया। साधुओं के स्थान पर गए तब उसे धर्म का क्षेत्र मान लिया। घर में आए उस समय वह गृहस्थ का खाता है। क्या यह खाता लड़ने के लिए है? तब फिर एक मुहूर्त तक सामायिक की मेहनत ही क्यों की? दिन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार खाने पर क्या उसका प्रभाव पांच-छह घण्टे तक नहीं रहता, सामायिक करके गए, उसका प्रभाव भी तो कुछ देर रहना चाहिए! सामायिक करने वाले को समता का व्यवहार करना चाहिए। सामायिक एक मुहूर्त तक करते हैं, यह अभ्यास का समय है। वास्तव में यह जीवन की चीज है, और उपयोगी है। सामायिक के वास्तविक मूल्य को समझकर उसे जीवन-व्यवहार में उतारना हमारा परम कर्तव्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म और रूढ़िवाद

'त्वद्वक्त्रकांतिज्योत्स्नासु, निपीतासु सुधास्विव।
मदीयैर्लोचनाम्भोजैः प्राप्यतां निर्निमेषता ॥'

आचार्य हेमचन्द्र ने भगवान महावीर की स्तुति करते हुए कहा है—भगवन्! मेरी आंखें निर्निमेष हो जाएं। आंखें पलकें मारती हैं, स्थिर नहीं रहतीं। आंखों का यह दरवाजा हर क्षण खुलता है और बन्द होता है। आंखों का यह दरवाजा भी स्थिर (निर्निमेष) हो जाए। बिना आकर्षण के स्थिर नहीं होता। आपके मुख की ज्योति का पान कर ये आंखें इतनी तृप्त हो जाएं कि फिर कोई भी वस्तु देखने की लालसा न रहे।

आचार्य ने इस माध्यम से अपने हृदय की भावना अभिव्यक्त की है। हमारे सामने कोई न कोई आदर्श चाहिए जिससे आंखें और मन स्थिर हो सकें, गतिविधियां केन्द्रित हो सकें।

एक खूंटे के आसपास बैल घूमता है। परिधि के लिए केन्द्र चाहिए। बिना केन्द्र के परिधि नहीं होती। एक केन्द्र या आदर्श की जरूरत है। आदर्श क्या है? आत्मा। आदर्श तक पहुंचने की गति क्या है? आत्मा। उसका साधन क्या है? आत्मा। आचार्य योगेन्द्र ने लिखा है—**'जहिं तहिं जोयउ, तहिं**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पाण उ'--जहां-तहां देखता हूं वहां आत्मा ही आत्मा है। आगे देखता हूं तो आत्मा है। दाएं देखता हूं तो आत्मा है। बाएं देखता हूं तो आत्मा है। ऊपर देखता हूं तो आत्मा है। नीचे देखता हूं तो आत्मा है। सर्वत्र आत्मा ही आत्मा है। क्या यह पागलपन है? सब जगह एक-सा रूप कैसे दिखाई दे? दक्षिण यात्रा के दौरान हमने एक स्थान पर देखा कि दर्पणों की विचित्रता से एक व्यक्ति के बहुत रूप दिखाई देते थे। एक ही आत्मा में छहों कारक घटित होते हैं।

ध्यान—आत्मा।

ध्यान का प्राप्य—आत्मा।

ध्यान का साधन—आत्मा।

ध्यान किसके लिए--आत्मा के लिए।

ध्यान किससे—आत्मा से।

ध्यान किसमें—आत्मा में।

आत्मा को जानना ही धर्म है। जितनी जानकारी होती है, उतना ही धर्म दूर होता है। आत्मा को जानना सम्यक् ज्ञान, आत्मा पर श्रद्धा करना सम्यक् दर्शन, आत्मा में रमण करना सम्यक् चरित्र है। आचार्य कुंदकुंद और अमृतचन्द्र ने यही परिभाषा दी है—आत्मा को जानना, देखना और रमण करना सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र है।

आत्मा अमूर्त्त है। उस पर आवरण आ गया है।

जहां भोग है वहां अलेप है, अभोग है वहां लेप छूट जाता है। भोगी संसार में भ्रमण करता है, उपभोगी संसार से मुक्त हो जाता है। इस उदाहरण से समझना है। मिट्टी का गोला भींत पर फेंकने से चिपक जाता है। सूखा गोला स्पर्श कर नीचे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिर जाता है।

जिसकी आत्मा में लेप (भोग) है, उसमें वासना, भावना, संस्कार आते हैं, वे चिपक जाते हैं। आत्मा उन्हें बांध लेती है, अथवा वे आत्मा में बंध जाते हैं। जिसकी आत्मा में लेप नहीं है, उसको वासना आदि मात्र स्पर्श कर चले जाते हैं।

इस दुनिया में जीने वाले खाना नहीं छोड़ सकते, पानी नहीं छोड़ सकते, आंखों से देखना नहीं छोड़ सकते, कानों से सुनना नहीं छोड़ सकते। खाएंगे, पीएंगे, आंखों से देखेंगे और कानों से सुनेंगे। समाज में रहते हैं, इसलिए एक-दूसरे से अलग होकर नहीं रह सकते, फिर आत्मा तक कैसे पहुंच पाएं, यह बड़ा प्रश्न है?

शरीर है तो क्रियाएं भी होंगी। खाना भी पड़ेगा, परन्तु खाने के साथ-साथ क्या, कैसे और कितना को जोड़कर देखो। खाना क्यों? खाना कैसे और खाना कितना? आंखों से भी देखना होगा, पर क्या, कैसे और किस भाव से देखें? इन प्रश्नों के सन्दर्भ में देखने से अन्तर आ जाएगा।

गृह्णाति दन्तैर्शिशुराखुपोतः,
पद्मं च वंशं दशति द्विरेफः।
भार्यां सुतां श्लिष्यति वै मनुष्यः,
तत्रापि नित्यं मनसः प्रमाणम् ॥

बिल्ली चूहे को पकड़ती है और अपने बच्चे को भी पकड़ती है। चूहे को पकड़ने वाले दांत दूसरे नहीं होते। जिन दांतों से बच्चे को पकड़ती है, उन्हीं दांतों से चूहे को भी पकड़ती है। दोनों में कितना अन्तर होता है! पहले में सुरक्षा की भावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहती है, दूसरे में दबोचने की। भंवरा कमल को भी डंसता है और बांस को भी डंसता है। बांस को काट देता है और कमलकोष में बंध जाता है। पिता अपनी पुत्री का आलिंगन करता है, जब वह ससुराल जाती है। वह अपनी भार्या का आलिंगन भी करता है। दोनों आलिंगनों में मन की भावना भिन्न-भिन्न है। भावना भीतर से आती है, बाहर से नहीं।

आसक्ति : अनासक्ति

परमार्हत कुमारपाल की सभा में हेमचन्द्र थे, और भी विद्वान् थे। स्थूलिभद्र का प्रसंग चल पड़ा। आचार्य हेमचन्द्र ने स्थूलिभद्र को अनासक्त भोगी बताया। बारह वर्ष तक कोशा वेश्या के घर पर रहे। षड्रस का भोजन किया। फिर भी निर्लिप्त रहे। दूसरे विद्वानों ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—

'विश्वामित्र पराशरः प्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशनाः,
तेऽपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्टैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत् सागरम् ॥'

विश्वामित्र, पराशर आदि ऋषि हवा, पत्ते और पानी खाते थे। वे भी स्त्री के सुललित मुख को देखकर भ्रष्ट हो गए। जो आदमी घी सहित आहार करे, दूध-दही खाए और इन्द्रियों का निग्रह भी रखे, कितना बड़ा आश्चर्य है!

पत्ते-पानी खाने वाले विश्वामित्र और पाराशर मोह में फंस गए और वेश्या के घर रहने वाले ब्रह्मचारी रहे, यह बात समझ में नहीं आती। एक बार सन्नाटा-सा छा गया। आचार्य हेमचन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने स्थिति को पढ़ा तो लगा वातावरण हाथ से जा रहा है। तब वे बोले—

'सिंहो बली द्विरदशूकरमांसभोजी,
संवत्सरेण रतिमेति किलैकवारम्।
पारापतः खरशिलाकणभोजनोऽपि
कामी भवत्यनुदिनं वद कोत्र हेतुः।'

सिंह मांस खाता है, फिर भी वह वर्ष में एक बार भोग करता है। कबूतर दाने चुगता है और कंकर चुगता है, फिर भी प्रतिदिन भोग करता रहता है। इसका हेतु क्या है? भोजन ही इसका हेतु हो नहीं सकता। आचार्य के यह कहते ही सारा वातवरण बदल गया। सब कहने लगे, आचार्य ने ठीक कहा है।

मूलस्रोत मन की आसक्ति है। आसक्ति और अनासक्ति के आधार पर ही परिणति होती है।

खाने के लिए पहला प्रश्न आता है—क्यों खाते हैं? उत्तर मिलेगा—जीवन को चलाने के लिए। क्या सचमुच जीवन को चलाने के लिए खाते हैं? कई लोगों को खाने का ज्ञान भी नहीं है। जीवन चलाने के लिए नहीं है, जीवन हमारी सफलता का माध्यम है। जो जीते हैं, वे ही दुनिया में काम करते हैं। जीने वाले भी कई ऐसे हैं, जो मरे हुए से अधिक हैं। वे अकर्मण्य और निराशा का जीवन जीते हैं। हम क्या कर सकते हैं? हम गरीब हैं। कई अपने को अतिसन्तोषी मानते हैं। वास्तव में वह सन्तोष नहीं है, जीवन की अकर्मण्यता है। वे लोग 'क्यों' का अर्थ नहीं समझते। खाना इसलिए खाना चाहिए कि जिससे ज्ञान, दर्शन और चरित्र की साधना की जा सके।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान का विकास

ज्ञान की साधना का क्षेत्र विशाल है। यदि आदमी अज्ञानी होता तो आज भी वह जंगलवासी होता। उसने गृह-निर्माण की कला सीखी, कपड़ा बनाना सीखा। पहले लिखने के साधन नहीं थे। भोजपत्र और ताड़पत्र पर लिखा जाता था। दक्षिण भारत में ताड़पत्रों पर लिखा हुआ बहुत मिलता है। तंजौर के पुस्तकालय में हमने देखा ताड़पत्रों का पार ही नहीं है। कागज का विकास बहुत देरी से हुआ। आदमी ने जाना और कागज बनाया। जाना तब सिक्के बनाए। पहले सिक्के थे ही नहीं। वस्तु का परस्पर विनिमय होता था। आदमी ने जाना तब इतनी वस्तुएं बनीं। पहले फल-फूल खाते थे, आज खाद्य पदार्थों का विकास हुआ है। भारत और चीन में खाने की वस्तुओं की बहुलता है। पचासों प्रकार की मिठाइयां हैं, तली हुई वस्तुएं हैं। जो विकास हुआ है, वह ज्ञान के द्वारा ही हुआ है। ज्ञान के अभाव में विकास नहीं होता।

स्मृति

परम्परा को भी कभी नहीं मिटाया जा सकता है, जब तक स्मृति है। मनुष्य की विशेषता है स्मृति। भैंसा, बैल, घोड़ा और ऊंट आदि में स्मृति नहीं है। स्मृति होती तो वे क्रांति कर देते, घेराव कर देते। आदमी इन पर भार भी लादता है और मार भी देता है। खाने को भी पूरा नहीं देता। फिर भी वे कुछ नहीं करते, क्योंकि उनके पास स्मृति नहीं है, चिन्तन नहीं है। मानव में स्मृति है। आदमी अतीत को भूलता नहीं है। जिसको भूलने का प्रयत्न करेंगे, वह ज्यादा याद आएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो आदमी अतीत को भुला देता है, वह निर्धन हो जाता है। अतीत को भुलाना नहीं है, उपयोग करना है। परम्परा को बनाए रखना आवश्यक है, जिसकी कि आज उपयोगिता है। जिनका मूल्य बदल चुका, उनको बनाए रखना मूर्खता हो जाती है।

पर्दा रखना भी एक परम्परा है। यह अनादिकालीन नहीं है। दक्षिण भारत में यह नहीं रहा। बंगाल, बिहार में परिस्थितिवश किंचित् आया है। जहां-जहां मुसलमानों का प्रभाव रहा, वहां-वहां परदा आया है। कारणवश आया है। आज कारण मिट गया, फिर भी वह पड़ा है। विवाह में बड़े भोज करते थे। आज मूल्य बदल चुका है। भोज खाते समय लोग गाली देते हैं, पीछे भी निन्दा करते हैं फिर भी किया जाता है। अभी आसाम में एक विवाह हुआ। उसमें प्रदर्शन किया गया। परिणाम यह हुआ कि वहां दंगा हो गया। आसामी कहने लगे—ये हमें चूसते हैं और हमारे सामने ही प्रदर्शन करते हैं। रोष जाग गया।

आज मूल्य बदल जाने के बाद भी लोग परम्परा को क्यों निभा रहे हैं? आज व्यर्थ परम्परा को निभाने वाले चूड़ा दिखाने के लिए झोंपड़ी तो नहीं जला रहे हैं? उपयोगिता समझनी चाहिए। आज जिसकी उपयोगिता नहीं है, उसका मूल्य कम होगा। सर्दी में ओढ़ी जाने वाली ऊनी कम्बल गर्मी में कोई नहीं ओढ़ता, क्योंकि उन कपड़ों की उपयोगिता नहीं है। जिन परम्पराओं की उपयोगिता व आवश्यकता मिट जाए, उनका भार ढोना मूर्खता के अतिरिक्त और क्या है? हमारा विवेक होना चाहिए, जो आवश्यक हो, उसे चालू रखें, जो अनावश्यक हो, उसे त्याग दें।

हम केवल धर्म का ही नहीं, कर्तव्य का बोध भी जागृत करें। विवेक जगाएं। श्रावक कौन होता है? इसके उत्तर में हरिभद्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने लिखा है—जो देश-काल के अनुसार अपना वेश बदलता है, जो देश-काल के अनुसार अपनी वृत्ति और व्यवहार बदलता है, वह होता है श्रावक।

मारवाड़ी तमिलनाडु में गए। उन्होंने वहां उन जैसा अपना वेश बदल लिया। उन्होंने कहा—यदि हम उन लोगों जैसे न बनें तो हमारा रहना कठिन हो जाए। जो व्यवहार-कुशल होता है, वह अपने आप में परिवर्तन कर लेता है। देश और काल को देखकर चलने वाला सफल हो जाता है।

हमारा ज्ञान, दर्शन और चारित्र विकसित हो, अनासक्ति आए, विवेक जागे। मैं नहीं चाहता धार्मिक लोग रूढ़ि का जीवन जीएं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म एक : मार्ग अनेक

'जिह्वे! प्रह्वीभव त्वं सुकृतिसुचरितोच्चारणे सुप्रसन्ना,
भूयास्तामन्यकीर्तिश्रुतिरसिकतया मेदकर्णौ सुकर्णौ।
वीक्ष्यान्यप्रौढ़लक्ष्मीं द्रुतमुपचिनुतं लोचने रोचनत्वं,
संसारेऽस्मिन्नसारे फलमिति भवतां जन्मनो मुख्यमेव ॥'

उपाध्याय विनयविजयजी ने लिखा है—जीभ! तू तैयार हो जा, धार्मिक पुरुष के गुणगान करने के लिए। कान! तुम भी तैयार हो जाओ, जो गुणी लोग हैं, जिन्होंने गुणों का अर्जन किया है, उनकी स्तुति या विशेषताओं को सुनने के लिए। आंखो! तुम भी तैयार हो जाओ, दूसरों की विशेषताओं को देखने के लिए।

दूसरों के गुण देख मन में प्रसन्नता जाग जाए, इससे बढ़कर लाभ क्या है? जीभ से गुणी लोगों का वर्णन नहीं किया तो वह बेकार है, कान से दूसरों के गुणों का श्रवण नहीं किया तो वह बेकार है, दूसरे के गुणों को देख आंख जल उठी तो वह बेकार है। जीभ विशेषताओं के वर्णन में लगे, कान विशेषताओं को सुनने में लगें, आंखें विशेषताओं को देखने में लगें यह जीवन का उपयोग है। इससे उल्टा होना जीवन का दुरुपयोग है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार भगवान महावीर ने गौतम से कहा—गौतम! आज तुम्हें सब योग प्राप्त हैं, इसलिए तुम प्रमाद मत करो। भावी पीढ़ी के लोग कहेंगे—

न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए।
संपइ नेयाउए पहे, समयं गोयम! मा पमायए ॥

आज जिन नहीं हैं, धर्म को साक्षात् जानने वाले नहीं हैं, अनेक मार्गदर्शक हैं और उनके भिन्न-भिन्न मत हैं।

जानना और साक्षात् जानना—इनमें बहुत अन्तर है। हम लोग दूसरों के माध्यम से जानते हैं, यह नगद धर्म नहीं है। जिस दिन नगद धर्म आ जाएगा, उस दिन बहुत कुछ बदल जाएगा।

'अहिंसा अच्छी है', क्योंकि भगवान महावीर ने कहा है कि अहिंसा से स्वर्ग और हिंसा से नरक मिलता है। पर क्या आपने जीवन में अनुभव किया कि अहिंसा से स्वर्ग और हिंसा से नरक मिलता है? जब हमारा यह अनुभव हो जाएगा तब वह नगद धर्म होगा।

मार्ग अनेक : पथिक एक

श्रीकृष्ण को मानने वाले गीता के अनासक्त योग की प्रशंसा करते हैं। महावीर को मानने वाले अहिंसा के गुण गाते हैं। बुद्ध को मानने वाले करुणा का बखान करते हैं। ईशु को मानने वाले कहते हैं—जो धर्म महाप्रभु ईशु ने बताया, वह किसी ने नहीं बताया। मुहम्मद के अनुयायी कहते हैं, धर्म की जो व्याख्या मुहम्मद ने दी वैसी किसी ने नहीं दी। सब अपना-अपना स्वर आलापते हैं। अपनी-अपनी प्रशंसा करते हैं। धर्म के मार्ग इतने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं कि बेचारा अल्पज्ञ पथिक भटक जाता है कि वह किधर जाए।

अल्पज्ञ को अपना ज्ञान बढ़ाना चाहिए। थोड़ा-सा ज्ञान पाकर अहं नहीं करना चाहिए। जिन लोगों ने तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया, वे गप्पें मार देते हैं। तुलनात्मक अध्ययन करने वाले यह अनुभव करते हैं कि धर्म में कहीं टकराव नहीं है। धर्म दो नहीं हो सकता। सत्य दो कैसे हो सकता है? व्याख्या भिन्न-भिन्न हो सकती है, एक ही सत्य की पचास आचार्यों ने भिन्न-भिन्न व्याख्याएं की हैं।

भगवान महावीर ने जो कहा, वह सूत्रों में ग्रंथित है। उसकी व्याख्या कौन करता है? हम लोग ही तो करते हैं। व्याख्या का भेद सत्य का भेद नहीं हो सकता। सत्य मूक है, वह बोलता नहीं। यह भेद उनमें है जिनके पास भाषा है, जो बोलते हैं।

भगवान महावीर देशना दे रहे थे। चोर ने सुनी तो उसे अच्छी नहीं लगी। विशेषता देने वाले की नहीं, लेने वाले की है। वर्षा का पानी सब जगह पड़ता है—कुण्ड में, तालाब में, खेत में, अकुरड़ी में, ऊसर भूमि में। कई जगह फलवान होता है, कई जगह खाली भी चला जाता है।

ग्रहण करने की अपनी-अपनी बुद्धि होती है। यदि बुद्धि की तरतमता नहीं होती तो इतना भेद भी नहीं होता। शब्दों की शक्ति और ग्रहण करने वालों की बुद्धि की तरतमता, इन दो कारणों से ही भेद होता है।

भगवान पचीस सौ वर्ष पहले प्राकृत भाषा में बोले थे। एक हजार वर्ष बाद वह वाणी लिखी गई, उस समय भाषा बदल गई। अर्धमागधी के स्थान पर महाराष्ट्री प्राकृत हो गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज हम हिन्दी में बोलते हैं।

आगमों में सैकड़ों शब्द ऐसे हैं जिनका यही अर्थ होगा, ऐसा कोई नहीं कह सकता। मलयगिरी, अभयदेवसूरि, हरिभद्र, हेमचन्द्र आदि आचार्यों को भी इसकी कठिनाई का अनुभव हुआ। उन्हें भी स्थान-स्थान पर लिखना पड़ा कि यह शब्द समझ में नहीं आया। उन्होंने केवलीगम्य कहकर छोड़ दिया। कोई भी जैन मुनि यदि ऐसा कहे कि सूत्रों के सब शब्द मेरे हृदयंगम हो गए हैं तो वह कोरा दम्भ होगा।

अनुमान लगाना ही पड़ता है। ज्यों-ज्यों गहराई में जाते हैं, उलझन बढ़ती जाती है। इन पन्द्रह हजार वर्षों में आचार्यों ने अपनी-अपनी दृष्टि से व्याख्या की है। इतने लम्बे काल में शब्दों के अर्थ बदल गए हैं। 'साहसिक' शब्द आज बहादुर का सूचक है, लेकिन पहले यही शब्द बिना सोचे-समझे करने वाले के अर्थ में था। कितना अर्थ बदल गया? भाषाशास्त्र का आज विकास हुआ है। भाषाशास्त्र में शब्दों का उत्कर्ष और अपकर्ष होता है। वह कालक्रम से होता है।

'दास' शब्द महान् जाति का सूचक था। दासों की संस्कृति महान् रही है, जैसे इंगलैंड में लार्ड शब्द अभिजात्य वर्ग का सूचक होता है। उत्तर भारत में ब्राह्मण, क्षत्रिय उच्चवर्ग के द्योतक हैं। आर्यों ने दासों पर आक्रमण किया, वे पराजित हो गए। आज दास शब्द का अपकर्ष हो गया। लोग दास कहते ही चिढ़ने लग जाते हैं।

प्रतिक्रमण में 'परपाषंड' शब्द आता है। आज पाषंडी शब्द कुत्सित अर्थ में प्रयुक्त होता है, लेकिन आवश्यक सूत्र के रचनाकाल में श्रमण सम्प्रदायों के अर्थ में उसका प्रयोग होता था। अशोक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के तेरहवें शिलालेख में लिखा हुआ है कि सब पाषंड मिल-जुलकर रहें। निर्युक्तिकार ने पाषंड को मुनि का पर्यायवाची माना है। शब्दों के अर्थों में काल-क्रम से अपकर्ष और उत्कर्ष होता रहता है।

कितना गम्भीर काम है प्राचीन शब्दों के अर्थ को समझना। थोड़े ज्ञान द्वारा वह समझ में नहीं आ सकता। मैं मानता हूं, जो बौद्ध और वैदिक साहित्य नहीं पढ़ता, वह जैन आगमों का अर्थ ठीक नहीं लगा सकता। तत्कालीन लौकिक साहित्य पढ़े बिना धर्म पूरा पकड़ में नहीं आता।

दशवैकालिक सूत्र में बावन अनाचार आते हैं। उनमें एक शब्द 'धूवनेत्ति' है। धूवनेत्ति का अर्थ प्राचीन आचार्यों ने धूप खेना किया है। आज का शोधक यह नहीं मानता कि प्राचीन व्याख्याकारों ने जो लिख दिया, वही ठीक है। उनके सामने सामग्री की बड़ी कठिनाई थी। आज हर शब्द की शल्य-चिकित्सा की जाती है। धूवनेत्ति में धूवन का अर्थ धूपन है तो फिर इति शब्द क्यों? खूब ध्यान दिया। फिर चरक पढ़ा। उसमें स्वस्थवृत्त प्रकरण में दशवैकालिक में वर्णित अनाचार से सम्बन्धित बहुत सारी बातें मिलती हैं। उसमें धूमनेत्र का अर्थ धूम्रपान की नली किया है। तब ध्यान गया कि धूवनेत्ति का अर्थ धूमनेत्र होना चाहिए। फिर तो उत्तराध्ययन सूत्र में भी 'धूमनेत्त' शब्द मिल गया। सूत्रकृतांग में उसका समर्थन मिल गया कि मुनि को धूम्रपान नहीं करना चाहिए। बौद्ध साहित्य में मिलता है कि भिक्षु को स्वर्ण का धूमनेत्र नहीं रखना चाहिए। आयुर्वेद के ग्रन्थ और बौद्ध साहित्य का अध्ययन करने से ठीक अर्थ लग गया।

काल-क्रम से शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनका अर्थ पकड़ना कठिन हो जाता है।

बौद्ध साहित्य और जैन साहित्य के कुछ श्लोक अक्षरशः मिलते हैं। महाभारत के भी सैकड़ों श्लोक उत्तराध्ययन सूत्र से मिलते हैं। कोई कहता है, जैनों ने महाभारत से लिया है। कोई कहता है, बौद्धों ने जैनों से लिया है और कोई कहता है, महाभारत ने जैनों से लिया है।

हमारा अध्ययन बढ़ना चाहिए। आज की दुनिया में अध्ययन के बिना काम नहीं चल सकता। स्कूलों में विद्यार्थी राम और कृष्ण के विषय में पढ़ते हैं, महावीर के बारे में नहीं जानते। जो जानते हैं, वह भी पूरा सही नहीं जानते।

अहिंसा के विषय में जितना बल महावीर ने दिया, उतना बुद्ध ने नहीं दिया। हमारी उपेक्षा के कारण या उदासी के कारण आज सारी दुनिया कहती है कि अहिंसा व करुणा का उपदेश बुद्ध ने दिया है।

आज साधन बढ़ गए हैं। 'बाबा वाक्यं प्रमाणं', आपके बच्चे भी नहीं मानेंगे। नए सन्दर्भ, नये परिवेश में धर्म की व्याख्या करनी होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म और विज्ञान

धर्म और विज्ञान या अध्यात्मवाद बनाम भौतिकवाद--यह मेरे विचार से वाद-विवाद का विषय बनता ही नहीं है। धर्म और विज्ञान दो नहीं, वस्तुतः एक ही विषय है। धर्म स्वयं विज्ञान है। एक वैज्ञानिक यहां हिन्दुस्तान में बैठा हुआ किसी प्रकार का प्रयोग या अन्वेषण करता है और जो निष्कर्ष उसके प्रयोग का निकलेगा, वही निष्कर्ष अमेरिका में बैठा हुआ एक वैज्ञानिक उसी तरह का प्रयोग करके प्राप्त करेगा। हजार वर्ष पहले किसी वैज्ञानिक ने प्रयोग करके जो फल निकाला था, हजार वर्ष बाद भी आज का वैज्ञानिक वैसे ही प्रयोग से वही फल प्राप्त करेगा। अतः स्पष्ट है कि त्रिकालाबाधित सत्य ही विज्ञान हैं। देश या काल के कारण इसमें कोई अन्तर नहीं आ सकता। इसी प्रकार धर्म के लिए भी हम कह सकते हैं। अतः मानना पड़ेगा, धर्म स्वयं विज्ञान है। किसी वस्तु को जानने का जो माध्यम है, वह है विज्ञान और उस माध्यम के द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है, वह है धर्म। विज्ञान वस्तु को जानने की प्रक्रिया है और धर्म आत्मा को पाने कि प्रक्रिया है, साधन है।

जहां तक प्रयोग का प्रश्न है वह गलत भी हो सकता है और सही भी। यह धर्म और विज्ञान दोनों पर लागू होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। चैतन्य अरूपी है, वह सामने दिखाई नहीं देता। आत्मा को किसी ने भी नहीं देखा। हम केवल छायामात्र को देख रहे हैं। यही समझिए सारी दुनिया छाया में जीती है। एक कुशल चित्रकार कहीं जा रहा था। उसने देखा वातावरण अत्यन्त सुन्दर है। चारों ओर मनोमुग्धकारी छटा है। सोचा—कोई अच्छा-सा चित्र बनाऊं। इतने में उसने देखा एक सुन्दर ग्रामीण बाला उधर से आ रही थी। सुन्दरता में प्रकृति का अद्भुत कृति ही मालूम पड़ती थी वह बस, निश्चय किया, इसी का चित्र बनाऊं। चित्रकार उसकी तरफ बढ़ा लेकिन वह बेचारी घबरा गयी और भय से दौड़ने लगी। चित्रकार के समझाने पर वह किसी प्रकार चित्र बनवाने के लिए तैयार हुई। चित्रकार ने चित्र बनाया और चित्र भी अनुपम बना। उसे एक चित्र-प्रदर्शनी में उसने रख दिया। लोगों ने चित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उस चित्र की बोली दस हजार रुपयों तक चढ़ गयी। भाग्यवश वहां अकाल पड़ा और जिस ग्राम-बाला का वह चित्र था वह भीख मांगती हुई, वहीं प्रदर्शनी के पास पहुंच गयी। उसका पति भी उसके साथ था। उसने देखा वह चित्र उसकी पत्नी का है। वह चिल्लाया—कैसी विडम्बना है, जिसका चित्र है वह भीख मांग रही है और उसके चित्र का सहस्रों रुपये मोल है। वहां खड़े एक व्यक्ति ने उसे समझाया—भाई! दुनिया छाया को मानती है। मूल का मूल्य नहीं मानती। इसी को लक्ष्य कर मैंने लिखा—

मूलस्पर्शो न खलु सुलभो दृष्टिरेवास्ति मुग्धा,
प्रायो लोकः प्रतिकृतिरतो मूल्यदाने विचक्षुः।
चित्रं मूल्यं नयति विपुलं चैकतश्चित्रकक्षे,
यस्या नार्या मुहुरवमता भिक्षते चैकतः सा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि हम छाया को मानते हैं, जो सामने दिखाई देता है उसी को मानते हैं। मूल कहां है? वह है चैतन्य। इसीलिए भौतिकता की बात सामने आती है। हमारे जीवन के सारे कार्य भौतिकता से चलते हैं, जैसे—खाना-पीना चलना-फिरना, ओढ़ना-पहनना आदि। क्या वे हमारे लिए अनुपयोगी हो सकते हैं?

आईंस्टीन ने एक बार कहा था—"हम लोग वैज्ञानिक दावे तो बहुत बड़े-बड़े करते हैं, लेकिन हमारे पास जानने के साधन इन्द्रियां और मन इतने दुर्बल हैं कि हमें अनेक बार भ्रान्ति में डाल देते हैं।" यह बिलकुल सत्य है। लोग कहते हैं आंखों देखी बात झूठी कैसे हो सकती है? लेकिन सत्य यह है कि ऐसा अनेक बार होता है। गाड़ी में बैठे हुए लोग अनुभव करते हैं कि पेड़ दौड़ रहे हैं, गाड़ी नहीं। क्या आंखें धोखा नहीं दे रही हैं? चलते समय मार्ग में हमने देखा लगभग एक मील सीधी सड़क जो कम-से-कम आठ फुट चौड़ी तो होगी ही साफ दिखाई दे रही है। लेकिन अन्त में उसका किनारा सिर्फ एक लकीर-सी दिखाई देता है। फिर हमने देखा आकाश जमीन को छूता हुआ-सा लग रहा है, लेकिन ज्यों ही हम चलते-चलते उस स्थान पर पहुंचे तो देखा उस स्थान पर नहीं, और आगे यह जमीन को छू रहा है। यह आंखों का धोखा नहीं तो क्या है? सुभाष चन्द्र बोस गुप्त वेश में लोगों की आंखों को धोखा देकर ही तो देश से भाग निकले थे। कितने उदाहरण गिनाए जाएं। आंखों से देखी व कानों से सुनी अनेक बात झूठी सिद्ध होती हैं। एक बार आचार्यश्री स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त के यहां पधारे थे। विचार प्रसंग में गुप्तजी ने एक पंक्ति कही—"एक मात्रा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रमाद से सखे, मेरा क्षीर सिन्धु क्षार सिंधु हो गया।" यह एक मात्रा के अन्तर का कितना सुन्दर उदाहरण है। जब इतने त्रुटिपूर्ण साधन हमारे पास हैं, तब हमें यह मानना पड़ता है कि हमारे पास कुछ और होना चाहिए। तभी मैंने अपनी कविता में एक बार कहा था—

यह प्रतीति सत्यों की गठरी, कब तक इससे लदे रहोगे,
जीवन में अनुभूत नहीं है, वही वही क्या सदा कहोगे?

इसलिए जब तक हम मान्यताओं से ऊपर नहीं उठेंगे तब तक यथार्थ तक नहीं पहुंच पाएंगे।

आज लोग विज्ञान को केवल दो शताब्दी पुराना ही मान बैठे हैं। इस काल में जो अन्वेषण और प्राप्ति विज्ञान ने की है सिर्फ वही विज्ञान है ऐसी लोगों ने धारणा बना ली है। लेकिन उपलब्धियां सामने हैं, वे विज्ञान नहीं हैं। वे तो उपलब्धियां मात्र हैं। यथार्थ भाव से देखना ही विज्ञान है। आत्मा से भिन्न कोई विज्ञान है ही नहीं।

अणुबम विज्ञान की देन है। लेकिन वह अपने आप कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि वह जड़ है। चेतना की शक्ति ही उसका उपयोग करके विनाश ढहाती है। शक्तियों का विकास कोई दोष नहीं है लेकिन उसका उपयोग सही ढंग से हो। जो विज्ञान को बुरा कहते हैं, उन्हें यह भी मानना पड़ेगा कि धर्म भी बुरा है क्योंकि उनको अलग करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। धर्म और विज्ञान त्रिकालाबाधित सत्य हैं, यही निष्कर्ष है।

अध्यात्म की तरह विज्ञान का क्षेत्र भी अत्यन्त प्राचीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। प्राचीन के लिए हजारों ने अपने आपको खपाया है। भारत में हजारों वर्ष पहले भी विज्ञान के क्षेत्र में अध्यात्म की तरह ही ऐसे-ऐसे अनुसन्धान हुए हैं। आज यदि उनके सामने उनकी उपलब्धियां रखी जाएं तो आप आश्चर्यचकित हो जायेंगे।

इसी तरह के अनुसन्धान अध्यात्म-क्षेत्र में किए गए। अनेक ने गूढ़ साधनाएं कीं, तभी अध्यात्म की अनुभूतियां प्राप्त हुईं। गुस्सा या आवेग जब आता है तो तत्काल दो क्षण के लिए श्वास रोक लें। गुस्सा स्वतः ठंडा पड़ जाएगा। इसी तरह के अनेक प्रयोग किए गए हैं। योग शास्त्र को जानने वाला खोज करके देखे कि प्राचीन आचार्यों ने कितने प्रयोग किए हैं। प्राचीन समय में हजारों कोस दूर बैठा साधु किसी अन्य साधु को सिर्फ याद करके उसका आसन डोला (हिला) सकता था और वह समझ जाता था कि उसे याद किया गया है। मैं जो बोल रहा हूं, मेरे ये शब्द आप साक्षात् नहीं सुन रहे हैं। मेरे ये शब्द ब्रह्माण्ड से टकराकर आपके पास पहुंचते हैं। क्या यह विज्ञान नहीं है?

इस दृष्टि से धर्म-विज्ञान दो धाराएं या शाखाएं नहीं हैं, एक ही चेतना-प्रवाह की दो कड़ियां हैं। मूल एक है, टहनियां दो हैं।

जिस तरह विज्ञान की उपलब्धियों का उपयोग विनाशकारी कार्यों में किया गया जाता जो सर्वविदित है, उसी प्रकार धर्म का उपयोग भी अनुचित ढंग से किया गया है और कहीं-कहीं तो उसका अत्यधिक दुरुपयोग भी किया गया है। इस तरह हम देखते हैं कि विज्ञान और धर्म का क्षेत्र भिन्न-भिन्न होते हुए भी मूल एक है। और मैं तो कहता हूं यह विशाल नगरों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के फ्लैट सिस्टम (Flat System) की तरह है। जहां एक ही मकान में कई फ्लैट होते हैं और उसमें रहने वाले वर्षों से वहां रहते हुए भी एक-दूसरे से अपरिचित-से बने रहते हैं।

धर्म क्रियाकाण्ड का रूप ले बैठा है, अतः अध्यात्म शब्द मुझे अच्छा लगता है। धर्म की ओट में ऊंच-नीच, जाति-पांति, छोटे-बड़े--ये सब अनेक दुर्गुण पनपने लगे हैं। जब तक ये भेद-भाव नहीं मिटेंगे तब तक दुनिया से संघर्ष नहीं मिटेगा। साथ-साथ यह भी ठीक है कि विज्ञान ने मनुष्यों को बांट दिया है। अच्छी-अच्छी उपलब्धियों के साथ-साथ बेकारी आदि भी विज्ञान की देन है और लगता है एक दिन मनुष्य को यह सोचने के लिए भी बाध्य हो जाना पड़े तो आश्चर्य नहीं कि मुझे यह विज्ञान नहीं चाहिए, मुझे तो अपने प्राकृत रूप में ही रहने दीजिए। उदाहरण--किसान की बहू जो पहले ही रूपवती बनी साधु के आशीर्वाद से, फिर पति द्वारा साधु से वरदान लेकर गधी बना दी गयी और फिर पुत्र की प्रार्थना पर साधु द्वारा पुनः मूल रूप में कर दी गयी।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईंस्टीन से एक बार किसी ने पूछा--तीसरा महायुद्ध किन अस्त्रों से लड़ा जाएगा? उन्होंने उत्तर दिया--तीसरा महायुद्ध किन-किन अस्त्रों से लड़ा जाएगा, यह तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन चौथा विश्वयुद्ध अवश्य पत्थरों से लड़ा जायेगा।

अतः आवश्यकता है कि विज्ञान के परिणामों पर अंकुश रखा जाए और वह अंकुश है धर्म या अध्यात्म।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म का सार्वभौम रूप–ध्यान

दो मित्र थे। एक का नाम था मिश्रा और दूसरे का नाम था वर्मा। एक बार मिश्रा वर्मा के घर गया। नीचे बैठे आदमी से पूछा–'वर्माजी कहां हैं?' उसने कहा–'ऊपर हैं।' ऊपर चढ़ने का दरवाजा बंद था। मिश्रा ने नीचे से आवाज दी। कुछ क्षणों बाद एक नौकर ने बरामदे में खड़े-खड़े कहा–'वर्माजी अभी घर पर नही हैं, बाजार गए हुए हैं।' मिश्रा अपने घर चला गया।

एक दिन वर्मा मिश्रा के घर आया। दरवाजा बंद था। नीचे से पुकारा मिश्रा ने बरामदे में आकर कहा–'मिश्राजी अभी घर में नहीं हैं, बाहर गए हुए हैं।' वर्मा बोला–'अरे, सामने तो खड़े हो और इनकार कर रहे हो?' मिश्रा बोला–अच्छे मित्र बने! मैंने तो उस दिन तुम्हारे नौकर पर भी भरोसा कर लिया था और तुम ऐसे हो कि मेरे पर भी भरोसा नहीं कर रहे हो?'

आदमी अपने आपको नकार रहा है। उसका भरोसा उठ गया। आवश्यकता है कि यह भरोसा जमे, विश्वास जमे। धर्म का भी भरोसा उठ गया। आज के युवक को, आज के चिंतनशील और विचारशील युवक को धर्म पर भी भरोसा नहीं रहा और वह धर्म भी बरामदे में खड़ा-खड़ा अपने आपको नकार रहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। आज की सबसे बड़ी अपेक्षा है कि धर्म भी अपने आपको प्रमाणित करते हुए बताये कि धर्म से कुछ हो सकता है। जब तक धर्म प्रमाणित नहीं करेगा और केवल यह सूत्र चलेगा कि धर्म से तुम्हारा परलोक सुधर जाएगा तो आज के आदमी का धर्म से भरोसा उठ जाएगा। आज तो यह प्रमाणित करना है कि इस हाथ से दो और उस हाथ से लो। धर्म करो, अभी तुम्हें लाभ होगा, तब तो धर्म के प्रति हमारा विश्वास जमेगा, नहीं तो आदमी उसे भी नकारने लग जाएगा और धर्म भी व्यर्थ हो जाएगा।

आज की जो सबसे बड़ी समस्या है, उस पर आचार्यवर ने ध्यान केन्द्रित किया। धर्म के प्रति अवज्ञा का भाव वर्तमान पीढ़ी में पैदा हो रहा है, यह सबसे बड़ी समस्या है। धर्म के अभाव में आदमी तनावग्रस्त हो रहा है, मानसिक समस्याओं से तनावग्रस्त हो रहा है। जब तक इन प्रयोगों में नहीं लगा था तब तक मुझे नहीं पता था कि इतने लोग मानसिक दृष्टि से बीमार हैं। और आसपास के लोग भी इतने बीमार हैं, इस बात का पता नहीं था, किंतु जब यह प्रयोग चला और प्रयोग के परिणाम आए, प्रतिक्रियाएं हुईं और लोग अपनी समस्याएं रखने लगे तो मुझे लगा कि जो अच्छे कपड़ों में, अच्छे डीलडौल में दीख रहे हैं वे मानसिक रूप से तो बहुत बीमार हैं। ये ऊपर से बहुत खिले हुए हैं पर भीतर से भगवान जाने क्या हो रहा है। इस सचाई का पता चला।

मैं मानता हूं, धर्म के क्षेत्र में एक नयी क्रांति गुरुदेव ने की है। पितामह भीष्म ने युधिष्ठर से कहा—तुम यह संदेश करते हो कि काल राजा का कारण होता है या राजा काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का कारण होता है। राजा काल को बदल देता है। अच्छा काल होना, बुरा काल होना, यह राजा पर निर्भर है।

राजा एक प्रतीक शब्द है। जो नेता, मुखिया या संचालक है, उसके ऊपर निर्भर होता है काल को बदल देना। मैं मानता हूं कि ध्यान के इस प्रयत्न ने सचमुच काल पर युगान्तर स्थापित किया है।

जिस बात की कोई संभावना नहीं थी कि ध्यान के प्रयोगों के द्वारा धर्म के मंच पर एक अद्‌भुत आकर्षण पैदा होगा, ऐसा सोचा नहीं जा रहा था किन्तु 'राजा कालस्य कारणम्'—जो नेता होता है, संचालक होता है, आचार्य होता है वह काल को बदलने वाला होता है। आप इस बात पर विश्वास करें कि काल को बदलने वाला होना चाहिए।

मुझे वह कहानी याद आती है। राजा बहुत खर्च करने लगा। खजाने में से बहुत बांटने लगा। बहुत व्यय करने लगा। खजांची आया और बोला—महाराज! आपके पुरखों का इकट्ठा किया हुआ खजाना, इस प्रकार आप खर्च करेंगे तो खाली हो जाएगा। यह आप कैसे करते हैं?' राजा बोला—'किसे कह रहे हो? क्या मैं चौकीदार हूं? रखवाली करना चौकीदार का काम है। मैं चौकीदारी के लिए पैदा नहीं हुआ हूं। रखवाली करना मेरा काम नहीं है। मेरा काम है—बढ़ाना, बढ़ाना। खजाना खाली होगा तो फिर भरेगा, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। यह चौकीदारी मुझसे नहीं हो सकती।'

एक होता है चौकीदार रखवाली करने वाला और एक होता है—बांटने वाला। जो स्वयं स्वतंत्र होता है। चौकीदार का काम उसके लिए अच्छा नहीं होता। यह बांटने की बात हमारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामने है।

भारतीय मानस में एक बहुत बड़ी जिज्ञासा रहती है कि आत्मा का दर्शन, परमात्मा का दर्शन, आत्मा का साक्षात्कार, परमात्मा का साक्षात्कार मिले। यह संस्कारगत, रक्तगत एक जिज्ञासा होती है।

उपाध्याय यशोविजयजी ने लिखा है—यदि तुम आत्म-दर्शन चाहते हो तो ज्ञान के द्वारा अन्तर्मुख बनो। जब तक तुम्हारा मुख बाहर की ओर रहेगा, तुम्हें अन्तर्दर्शन नहीं होगा। जैसे ही तुमने अपने दर्शन को मोड़ा और अन्तर्मुख किया, भीतर की ओर मोड़ा तो आत्मा का दर्शन तुम्हें हो जायेगा। जब तक आत्म-दर्शन नहीं होगा तब तक हमारी भ्रान्त कल्पनाएं नहीं मिटेंगी। सबसे बड़ी भ्रान्ति है कि दवाइयां लेते जाओ और जीते जाओ। यह सबसे बड़ी भ्रान्ति है। दवाइयां लेते जाओ और नींद लेते जाओ। नींद लेनी है तो दवा। खाना है तो दवा। पचाना है तो दवा। पता नहीं और क्या होगा। कोई काम करना है तो दवा और फिर कभी यह आएगा कि आदमी बनना है तो दवा। और इसके सिवाय क्या मिलेगा फिर? एक बहुत बड़ी भ्रांति पाल ली, यह करते जाओ। यह शार्टकट कर दिया। व्यक्ति ने नहीं सोचा, जब तक प्राणशक्ति नहीं जागेगी तब तक दवा लेने से क्या होगा? दवा एक साधन हो सकती है किन्तु नींद के लिए तो दवा कोई साधन नहीं है। इतनी तेज जहरीली दवाइयां लेते हैं दिन में दस-बीस गोलियां, तो ऐसा लगता है कि अपना कुछ बचा नहीं, सारा शरीर ही दवा बन गया। ये भ्रान्तियां जो बनी हुई हैं, ये भ्रान्तियां टूटें।

वर्तमान युग में धर्म का यदि कोई सार्वभौम रूप हो सकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है तो यह ध्यान हो सकता है। ऐसा रूप कि जिसके बारे में किसी को कुछ कहना नहीं हो सकता। शिविर में आने वालों ने कहा, हम लोग यहां आए, न पंथ की, न गच्छ की बात सुनी, न किसी के बारे में कुछ सुना। मैंने कहा—आप तो गच्छ और सम्प्रदाय की बात करते हैं, ध्यान का मार्ग तो ऐसा है कि जहां आदमी भी नहीं बचता। कोरा चैतन्य बचता है। आदमी बचे तब गच्छ की, सम्प्रदाय की बात होगी।

एक व्यक्ति ने पूछा—'उस बांझ का पुत्र गोरा है या काला?' पास में बैठा व्यक्ति बोला—बांझ के बेटा होता है या नहीं, पहले यह तो सोचो, गोरे-काले की बात तो बाद में आएगी। पहले ही कैसे चिन्ता करते हो?' जहां चैतन्य ही होता है, आदमी ही नहीं बचता तो वहां सम्प्रदाय, गच्छ आदि की बात कहां से आएगी।

यह वर्तमान की समस्या का नया समाधान हमारे सामने प्रस्तुत है। कई लोगों ने कहा—काम तो बहुत अच्छा, पद्धति बहुत अच्छी पर स्पुतनिक के युग में हमारी गति बैलगाड़ी जैसी है। इस बात पर काफी लोगों ने चिन्ता प्रकट की है। इस बात को पकड़ा गया, विचार किया गया, सोचा गया कि यदि स्पुतनिक तक न पहुंच सकें तो कम-से-कम वायुयान तक तो पहुंचें ही।

लोगों को प्रेरणा मिली है और मैं सोचता हूं कि आचार्यवर का आशीर्वाद सभी लोगों की प्रबल जिज्ञासा और भावना तथा युग की बहुत प्रबल मांग—इन सारी स्थितियों के संदर्भ में धर्म का सार्वभौम रूप क्रियान्वित होकर रहेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भविष्य की परिधि : वर्तमान का केन्द्र

'इक्षुवद् विरसाः प्राप्ते, सेविताः स्युः परे रसाः।
रसः शान्तस्तु सुतरां, सरसः स्यात् परात् परः ॥

अध्यात्म योगी आचार्य ने लिखा है—ईख सरस और मीठा होता है। उसके लिए व्यक्ति का मन ललचा जाता है। ईख को चूसने के बाद वह विरस हो जाता है। आदि में सरस होता है और अन्त में विरस हो जाता है। शान्त रस का क्रम इससे विपरीत है। शान्त रस आदि में सरस नहीं लगता, किन्तु जैसे-जैसे उसका अभ्यास बढ़ता है, उत्तरोत्तर वह सरस बनता जाता है। जिसने कायोत्सर्ग का अभ्यास कर लिया, वह खाना छोड़ सकता है, पर कायोत्सर्ग नहीं छोड़ सकता। जप का अभ्यास करने पर जप किए बिना पानी भी नहीं पीता। चाहे कितनी ही देर क्यों न हो जाए, वह जप करके ही आहार ग्रहण करता है। शांत रस प्रारंभ में इतना सरस प्रतीत नहीं होता, परन्तु अन्त में वह सरस बनता जाता है।

संस्कृत की सरसता

कालूगणी हम लोगों को संस्कृत पढ़ने के लिए प्रेरणा देते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए कहते—संस्कृत अलूणी शिला है। जिस दिन इसका स्वाद आ जाएगा, तुम छोड़ोगे भी नहीं। उनकी प्रेरणा से हम कुछ विद्यार्थी साधुओं ने संस्कृत रटना, पढ़ना और लिखना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में रस नहीं आया, लेकिन अब आ रहा है। कालूगणी की प्रेरणा, पूज्य गुरुदेव का प्रयत्न और हम बाल-साधुओं की परस्पर प्रतिस्पर्धा से ही हम लोगों ने संस्कृत में गति की। आज जब मैं अनपढ़ों का जीवन और पढ़े-लिखों का प्रमाद खोता हूं तो सोचता हूं, इनका जीवन में कैसे विकास होगा और ये कैसा जीवन जीते हैं?

धर्म और अध्यात्म भी प्रारम्भ में अलूणा लगता है। अभ्यास से इतना रस आता है कि फिर वह छोड़ा नहीं जाता। जिसका मन सामायिक करने में लग जाता है, फिर वह उसे नहीं छोड़ सकता। धर्म इसलिए किया जाता है कि इसमे उत्तरोत्तर मन की प्रसन्नता और आनन्द बढ़ता जाए।

कपिल मुनि ने चारों को शिक्षा देते हुए कहा—

अधुवे असासयंमि, संसारम्मि दुक्खपउराए।
किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दुग्गई न गच्छेज्जा॥

यह संसार अध्रुव और अशाश्वत है, कृपया बताइए वह कौन-सा कर्म है जिससे दुर्गति में न जाऊं।

यह मन से निकाल दीजिए कि मरने से दुर्गति या सद्गति मिलेगी, परलोक में सुख मिलेगा या दुःख—यह स्थूलदृष्टि है। मोक्ष यहीं होगा और इसी क्षण में होगा। वर्तमान में यदि मोक्ष नहीं होगा तो भविष्य में भी नहीं होगा।

घड़ा कब बनता है? कुम्हार मिट्टी खोदता है तब। यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई प्रश्न करता है कि क्या करते हो? वह कहेगा—घड़ा बना रहा हूं। मिट्टी में पानी डाल चाक पर चढ़ाते समय कोई पूछे तो वही उत्तर देगा—घड़ा बना रहा हूं? डोरी से मुंह काटकर घड़ा नीचे उतारने पर प्रश्न पूछे तो भी वह वही उत्तर देगा। लोग कहते हैं, आवां से पकने पर जब वह बाहर आता है तब घड़ा बनता है। प्रश्न होता है—मिट्टी खोदते समय, चाक पर चढ़ते समय क्या घड़ा नहीं है? यदि नहीं है तो केवल पकने पर कैसे होगा? मिट्टी खोदने से पकाने तक की सारी प्रक्रिया घट की ही है।

पहली क्रिया में घट नहीं है तो अन्तिम क्रिया में वह घट कैसे होगा?

धर्म से मोक्ष भी उसी क्षण मिलता है। वर्तमान जीवन की विमुखता से यथार्थ पर आवरण आ गया है। होना यह चाहिए कि वर्तमान का जीवन अच्छा हो। परलोक न बिगड़े, यह एक पक्ष है। सत्य यह है कि परलोक सुधरने से पहले वर्तमान सुधरे। वर्तमान सुधरने से परलोक स्वयं सुधर जाएगा। वर्तमान में कैसा जीवन जी रहा हूं, इसकी चिन्ता करने से बुढ़ापे की चिन्ता नहीं होती। जवानी की अवस्था में अच्छा कमाने पर बुढ़ापे में चिन्ता नहीं होती। बुढ़ापे में तो परिणाम आएगा। वैसे ही परलोक तो परिणाम है। खेती करने वाला चिन्ता यह करता है कि खेती अच्छी हो। जानवर न खाएं। फसल तो अपने आप आएगी। सामायिक करने से संवर वर्तमान में होता है या कुछ दिनों बाद? उपवास करने से निर्जरा उसी समय होती है या समयान्तर से? जब सामायिक का संवर और उपवास की निर्जरा वर्तमान में होती है, तब धर्म के लिए भविष्य की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिन्ता क्यों करें? जो वर्तमान को नहीं जानता, वह भविष्य को भी नहीं जानता। परन्तु आज के धार्मिक लोगों में मिथ्या विश्वास घर कर गया है। वे वर्तमान पर सूक्ष्मता में ध्यान दें तो पता लगेगा कि क्रिया का फल वर्तमान में ही मिल रहा है।

मानसिक आवेग

किसी के घाव होता है, लोग समझते हैं कीटाणु के कारण हुआ है। पर गहराई से ध्यान दें तो आपको लगेगा मानसिक अशुद्धता से बीमारी हुई है। ईर्ष्या से व्रण हो जाता है। आयुर्वेद में भी लिखा है—भय से हार्ट कमजोर हो जाता है। बुरे चिन्तन से कोढ़ की बीमारी हो जाती है। मेरे मन में संशय था, परन्तु होमियोपैथी के डॉ॰ हैनिमन की प्रस्तावना पढ़ी ता समझ में आया, उसमें लिखा है—बीमारी का मूल कारण कीटाणु नहीं है। बीमारी की जड़ अचेतन मन में होती है। मन को शुद्ध कीजिए, विकार दूर कीजिए, बीमारी मिट जाएगी। अधिकांश बीमारी अन्तर्मन पर निर्भर करती है। यदि वर्तमान पर थोड़ा-सा ध्यान दें उसे समझें तो कठिनाई मिट सकती है।

भाव-क्रिया

भाव-क्रिया वर्तमान की क्रिया का ही रूप है। पहले और पीछे की क्रिया द्रव्य-क्रिया होती है। छह नयों में एक नय एवं भूत होता है। वह वर्तमान की क्रिया को ही स्थान देता है। भिक्षा लेते समय साधु साधु नहीं है, भिक्षु है। साधना करते समय वह भिक्षु नहीं, साधु है। बोलते समय साधु मुनि है। यह वर्तमान का विवेक है। आज के धार्मिकों को वर्तमान पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान देना है। एक ओर सामायिक और दूसरी ओर घर में लड़ाई, इनमें सामंजस्य कहां है? धर्म करने वाले स्वास्थ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते। स्वस्थता के बिना धर्म कैसे होगा? आर्थिक स्थिति और सामाजिक समस्या भी धर्म में बाधक बनती है। सब चीजें वर्तमान पर टिकती हैं। वर्तमान की समस्या का इलाज भी वर्तमान में होता है।

आचार्य भिक्षु के समय संत हेमराजजी गोचरी गए। मूंग और अरहर की दाल एक साथ ले आए। भिक्षु स्वमी ने उपालंभ दिया। मूंग की दाल अलग होती तो किसी बीमार साधु के काम आ सकती थी। उपालम्भ सुन वे चले गए और सो गए। संत सब भोजन के लिए बैठे तो हेमराजजी नहीं थे। पूछा—'कहां है?' किसी ने उत्तर दिया—'वे तो सो रहे हैं।'

भिक्षु स्वामी ने हेमराजजी स्वामी को सम्बोधित करते हुए पूछा—'क्या कर रहे हो?'

उत्तर—'सोच रहा हूं।'

प्रश्न—'अवगुण मेरा देखते हो या अपना?'

उत्तर—'अवगुण तो अपना ही देख रहा हूं।' बस फिर क्या था, तत्काल खड़े हो गए। वर्तमान की समस्या का इलाज वर्तमान में ही हो गया।

जिन्होंने वर्तमान को समझा, उन्होंने भविष्य को भी ठीक कर लिया। धर्म को समझने का अर्थ है वर्तमान को समझना। वर्तमान को सुधारने से भविष्य स्वयं सुधर जाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिंसा और अहिंसा

'रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलं।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं, तत् तत्त्वं नेतरो जनः ॥'

सत्य हमारे सामने है, किन्तु हर आदमी देख नहीं पाता। सत्य को वही देख पाता है जिसका मन राग-द्वेष की ऊर्मियों से प्रतिहत नहीं है। हमारे सामने रहे हुए सत्य को भी हम नहीं देख सकते। जब तक आंख पर राग और द्वेष का चश्मा लगा रहता है। तब तक यथार्थ दिखाई नहीं देता। रंगीन चश्मे से जो है वह दिखाई नहीं देता, जो नहीं है वह दिखाई देता है। लाल चश्मे से वस्तु लाल और पीले चश्मे से पीली दिखाई देती है। राग का चश्मा लाल है, द्वेष का चश्मा श्याम है। इससे सारी वस्तु काली दिखाई देती है जबकि दिखना चाहिए यथार्थ।

सत्य क्या है? अनादिकाल से यह प्रश्न चर्चित रहा है। बहुत-से आचार्यों ने, चाहे वे जैन के हों, चाहे वेदान्त के हों, चाहे दूसरे धर्म के हों, सभी ने इस प्रश्न पर गहराई से मीमांसा की है।

सत्य और भ्रान्ति दो हैं। जो सत्य नहीं है, उसे सत्य मान लेना भ्रान्ति है। असत्य को सत्य और सत्य को असत्य मानना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि का दोष है। जो सत्य को जानना चाहता है, उसे व्रती होना चाहिए।

व्रती का अर्थ है रंगीन चश्मे को उतार देना। पहला व्रत है—अहिंसा। लोग अहिंसा व्रत को स्वीकार भी करते हैं। जिसने अहिंसा व्रत को स्वीकार किया या संकल्प लिया है, उसमें तेजस्विता न आए यह हो नहीं सकता। अहिंसा स्वीकार कर लेने पर शक्ति न बढ़े यह हो नहीं सकता। लोगों ने स्थूल रूप में अहिंसा को पकड़ा है। अहिंसा का अर्थ समझा है—जीवों को नहीं मारना। पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय के जीवों की सीमा करते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों को भी संकल्पपूर्वक नहीं मारते। पंचेन्द्रिय तीतर, मोर आदि पक्षियों को भी, जिनका कभी काम नहीं पड़ता, मारने का त्याग करते हैं। जहां पशुओं का प्रश्न आता है वहां और अधिक कठिनाई पैदा हो जाती है और जहां मनुष्य का सवाल आता है वहां और अधिक कठिनाई अनुभव होती है। अहिंसा का मूल मर्म क्या है? इस पर ध्यान देना है। चींटी को नहीं सताने वाले, आदमी की उपेक्षा कर देते हैं, क्या यह ठीक है? जहां लेन-देन का प्रश्न आता है, वहां गरीब को इतना ऐंठते हैं कि वह तबाह हो जाता है, फिर भी उनका अहिंसा व्रत भंग नहीं होता।

अहिंसा व्रत स्वीकार करने वाले के सामने आरोप आता है कि उन्होंने समाज और देश को कायर बना दिया है। हिन्दुस्तान परतन्त्र बना, इसका कारण भी अहिंसा कहा जाता है। आज कोई भी समस्या आती है तो भारत के नेता अहिंसा से सोचकर रह जाते हैं। पाठ्यक्रम की पुस्तक में मिलता है और लड़कों को पढ़ाया भी जाता है कि अहिंसा से देश कायर बन गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या यह आरोप सही है। इतिहास के सन्दर्भ में देखें तो मौर्यवंश के राजा अहिंसानिष्ठ थे। उनके शासनकाल में अहिंसा का विकास हुआ था। उसके बाद गुप्तकाल आया। उसमें सम्राट् चन्द्रगुप्त, सम्प्रति, हर्षवर्धन अहिंसा में विश्वास रखते थे। उस समय हिन्दुस्तान का विस्तार हुआ था। भारत की सीमा अफगानिस्तान तक चली गई थी और मध्य एशिया तक चली गयी थी। गुप्तकाल और मौर्यकाल से पहले भारत का इतना विस्तार नहीं हुआ था। फिर क्या हम मानें, अहिंसा समाज और देश को कायर बनाती है? विक्रम की शताब्दी का समय आता है, उधर शंकराचार्य होते हैं? आपसी फूट बढ़ती है, एक-दूसरे को निगलने की वृत्ति होती है तब मुसलमानों का आक्रमण होता है और देश परतन्त्र हो जाता है। आजकल गलत बातें पढ़ाई जाती हैं। जो लिखने वाले हैं, उन पर सम्प्रदाय का रंग चढ़ा हुआ है।

हिंसा जितनी आपसी कलह से प्रकट होती है उतनी और बातों से नहीं। मनुष्य-जीवन की सहज दुर्बलता है हिंसा। मनुष्य का सारा जीवन हिंसा पर टिका हुआ है। व्यापार, खेती, पीसना, पकाना आदि क्रियाओं में हिंसा होती है। जब शरीर को चलाना हो तो हिंसा करनी पड़ती है, उसके बिना जीवन चलता नहीं। यह आरंभजा हिंसा है।

जिस समाज ने या देश ने अपने अस्तित्व को बनाया, उसकी प्रभुसत्ता स्थापित की, उसके नागरिक अपने दायित्व को समझते हैं। कोई भी उस पर आक्रमण करे तो उसकी सुरक्षा करना उनका कर्त्तव्य है, क्योंकि उसका दायित्व उन्होंने अपने पर ले रखा है। यह विरोधजा हिंसा है।

इन दोनों हिंसाओं को छोड़ने से साधारण और सामाजिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य अपने को असमर्थ पाता है। तीसरी हिंसा संकल्पजा है। घर में लड़ाई करना जरूरी नहीं है। रोटी खाने में, पकाने में भी लड़ाई चलती रहती है। उसे ज्यादा परोस दिया, मुझे कम परोस दिया। छोटी-छोटी बातों को लेकर घर में लड़ाई चलती रहती है। यह हिंसा जरूरी नहीं है। घर में होने वाली यह हिंसा अनिवार्य नहीं है। यह संकल्प की हिंसा है। व्यापार में भी लड़ाई हो जाती है। थोड़े समय तक साथ में रहते हैं, फिर अलग-अलग हो जाते हैं। विवेकानन्द ने लिखा है कि अमेरिका में पांच आदमी मिलकर कम्पनी बनाते हैं। सैकड़ों वर्षों तक साथ में रहते हैं, उन्हें कठिनाई नहीं होती। भारत की स्थिति यह है कि यहां दो आदमी मिलकर कम्पनी बनाते हैं। जब विकास या वृद्धि होने लगती है तब अलग-अलग होने लगते हैं। एक आदमी दूसरे की उच्चता सह नहीं सकता। यह मानसिक हिंसा है।

वह त्याग जरूरी है। जिसका जीवन पर असर आए और दूसरों पर भी असर आए। तब व्रत की पूर्णता होती है। केवल मुझ पर असर आए, दूसरों पर नहीं—यह विकलांगता है। कोई सामायिक करे, उसका दूसरों पर क्या असर आए? परिवार के सदस्यों के साथ लड़ाई न हो तब दूसरों को असर मालूम देता है। मान और अपमान की बात भी सामने न लाए। धनी सोचता है—विवाह ऐसा करूं जैसा आज तक किसी ने नहीं किया। दशार्णभद्र ने सोचा, भगवान को वन्दना करने इस प्रकार साज-सज्जा से जाऊं जैसा आज तक कोई तक कोई न गया हो। न जाने कितने इस मोह में खराब हो गए। आदमी से अहं ऐसा कराना चाहता है जो आज तक नहीं हुआ। वह लोगों को गलतमार्ग पर चलने को बाध्य कर देता है। यद्यपि गलती उनकी है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे क्यों चलते हैं। फिर भी यह दुनिया है। लोग अनुकरणप्रिय होते हैं।

महाकवि माघ एक बार नदी में स्नान करने गए। पास में लोटा था। सोचा, कल भी लाना पड़ेगा इसलिए नदी के तट पर बालू में गाड़ दिया। किसी ने देख लिया माघ ने गाड़ा है तो कोई न कोई प्रयोजन है। देखते-देखते ही पांच-दस लोगों ने अपने-अपने लोटे गाड़ दिए। सब चले गए, पीछे से एक व्यक्ति और देख रहा था। उसने सब लोटे निकाल लिये। दूसरे दिन माघ आए। देखा तो लोटा नहीं मिला, जगह-जगह खड्डे ही पड़े हैं, तब माघ ने कहा—**गतानुगतिको लोकः, नः लोकः पारमार्थिकः।**

लोग गतानुगतिक होते हैं, अनुकरणप्रियः होते हैं, पारमार्थिक नहीं होते।

समाज में कोई आदमी अहं से पागल होकर कोई काम करता है। क्या सबको पागल हो जाना चाहिए? जिसके मन में अहंकार है, वह करे, मैं पागल क्यों बनूं? जब सिर पर प्रदर्शन का भूत सवार हो जाता है तब कौन पागल नहीं होता? बाहुबली जैसे चरमशरीरी के मन में अहंकार आ गया कि मैं भरत को वंदना करने नहीं जाऊंगा? फिर साधारण गृहस्थ की तो बात ही क्या?

समाज में जिनकी शक्ति व क्षमता नहीं है, फिर भी अनुकरण, प्रधान होने के कारण वे बहुत बड़ा काम कर लेते हैं। समाज में दुर्व्यवस्था फैलती है, उसका दोषी पहला आदमी है।

हिंसा और अहिंसा को स्थूलरूप में पकड़ा गया है। हरिभद्र ने कहा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'आया चेव अहिंसा, आया हिंसाति निच्छवो एस।
जो कोई अप्पमत्तो, अहिंसको हिंसको इयरो ॥

आत्मा ही हिंसा है, आत्मा ही अहिंसा है। जो अप्रमत्त है, उससे जीव मरता है तो उसका पाप नहीं लगता। जो प्रमत्त है, उससे कोई जीव नहीं मरता है तो भी हिंसा होती है—

आचार्य भिक्षु ने कहा है—

जीव जीवे ते दया नहीं, मरे ते हिंसा मत जाण।
मारण वाले ने हिंसा कही, नहीं मारे ते दया गुणखाण ॥

जीव जीता है उसका धर्म नहीं होता और कोई जीव मरता है उसका पाप नहीं लगता। मैं जब छोटा था तब हेमराजजी स्वामी के पास जाता था। जोधपुर में एक बार उनके मुंह से बात निकल पड़ी कि केवलज्ञानी चलते हैं, पैर से जीव मर जाते हैं तो उन्हें पुण्य की क्रिया लगती है। मैंने पहले नहीं सुनी थी। मुझे नई बात लगी। सन्देह हुआ। पूछा—आपने क्या कहा? उन्होंने कहा—अब नहीं बतलाऊंगा। मैंने काफी आग्रह किया, पर वे नहीं बोले।

हिंसा का पाप लगता है। इसलिए नहीं कि वह जीता है या मरता है। देखना यह है कि मारने वाला प्रमत्त है या अप्रमत्त, राग-द्वेष सहित है या रहित, मोह से ग्रस्त है या नहीं।

जब तक शरीर है, जीव हिंसा से सर्वथा बच नहीं सकते। हम चर्मचक्षु से देख नहीं पाते, लेकिन माइक्रोस्कोप से पता चलता है कि कितने जीव हैं। मैं बोल रहा हूं, अभी कुछ भी दिखाई नहीं देता। बैंगलोर में हमने देखा—जब हम बोलते हैं तो सांप की गति की तरह शब्द दौड़ते जाते हैं। डेक्कन कॉलेज में वहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के डायरेक्टर ने दिखाया कि बोलने से भाषा की कैसी गति होती है। गाना शुरू किया, यंत्र में आकृति मंडती जा रही है। भाषा के शब्द सांप की भांति रेंगते हुए चले जा रहे हैं। अभी तो दिखाई नहीं दे रहा है, चाहे हम कितना ही क्यों न देखें।

एक आदमी लिखता है, कलम और कागज के बीच में कुछ दिखाई नहीं देता। यन्त्र से देखें तो कलम और कागज के बीच कितने ही जीव मिलेंगे। जल में जीव है, जमीन पर जीव है, एक भी अणु ऐसा नहीं है जहां जीव नहीं है। अवधिज्ञान प्राप्त होने पर अवधिज्ञानी जब देखते हैं तो जीव ही दिखाई देते हैं।

जब तक शरीर है, जीव हिंसा से बचना कठिन है। भगवान ने बताया—तुम संयमपूर्वक चलो, संयम से ठहरो, संयम से बैठो, संयम से सोओ, संयम से खाओ—पाप का बन्धन नहीं होगा। जीव है या नहीं। इसे छोड़ दो। क्या हिंसा से बच जाते हैं या नहीं, पर भावना से तो बच ही जाते हैं। आज अहिंसा के साथ जीव का सम्बन्ध जोड़ रखा है और भावना का प्रश्न उड़ा दिया है।

हिंसा के कारण क्या हैं? हिंसा की ओर समाज को कौन ले जाता है? इन प्रश्नों को हमें गहराई से सोचना है। आज अहिंसा व्रत को स्वीकार करें। नए युग के सन्दर्भ में अहिंसा की नई व्याख्या समझनी चाहिए और यह आवश्यक भी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन में अहिंसा का रूप

'एकोहं नास्ति मे कश्चन, न चाहमपि कस्यचित्।
त्वदंघ्रि शरणस्थस्य, मम दैन्ये न किंचन ॥

भगवन्! मैं अकेला हूं। मेरा कोई नहीं है और न मैं किसी का हूं। कठिन बात है अकेला होना, असहाय होना, अपूर्ण होना। अकेले में दीनता आ जाती है। केवल स्त्री या केवल पुरुष होता है तो बीमारी में दीनता आ जाती है। आदमी दूसरे को चाहता है, क्योंकि वह काम का सहयोग चाहता है। अकेले में रहना कठिन बहुत है।

आचार्य अकेला होना चाहते हैं। वे कहते हैं—मेरे में हीनता नही है, क्योंकि मैंने आपके दोनों चरणों को मजबूती से पकड़ा है। अब दैन्य आ ही नहीं सकता।

इस दुनिया में सहारे की जरूरत हर व्यक्ति को होती है। बिना आलम्बन के कोई आगे बढ़ नहीं सकता। आदमी क्या, प्रकृति का हर विकासशील प्राणी या वस्तु सहारा ढूंढ़ता है। लता सहारे से ऊपर उठती है। अंगूर की बेल के लिए उस पर ढांचा खड़ा करना पड़ता है। सहारे के आधार पर सुगमता से विकास किया जा सकता है। प्रत्येक को सहारे की आवश्यकता होती है। भक्त कहता है—भगवन्! आपके सहारे से मुझे अकेलेपन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की अनुभूति नहीं हो रही है।

सम्बन्ध के योग

आत्मा अकेली है। उसका कोई नहीं है। यह निश्चय नय की बात है। व्यवहार में आदमी सम्बन्ध जोड़ता है पहले शरीर के साथ सम्बन्ध जोड़ता है। फिर जाति, परिवार, समाज और देश के साथ सम्बन्ध जोड़ता है। आजकल अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी सम्बन्ध जुड़ने लगा है। उस सारे संबंधों के मूल में अहिंसा का विकास है।

सहिष्णुता

अहिंसा के विकास के बिना स्वस्थ नहीं रह पाते और उसके लिए अहिंसा का विकास करना जरूरी है। अहिंसा के विकास के लिए शक्ति का होना जरूरी है। अहिंसा के विकास के लिए सहिष्णुता का होना जरूरी है। सहिष्णुता का अर्थ है—एक-दूसरे की कमजोरियों को सहन करना। परिवार में दस व्यक्ति होते हैं। सब सकाम नहीं होते। किसी में कोई कमजोरी होती है, किसी में कोई। कोई गुस्सा अधिक करता है तो कोई आलसी होता है। एक-दूसरे की कमजोरी सहन न करे तो परिवार शान्ति से चल नहीं सकता। अहिंसा का अर्थ है—दूसरों को क्षमा करो।

शान्त सहवास

कोई भी पूर्ण नहीं होता। मैं भी नहीं हूं। मेरी कमजोरी को वे सहन करें और उनकी कमजोरी को मैं सहन करूं। शान्त सहवास तभी हो सकता है जब एक-दूसरे की कमजोरी को सहन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करें। यदि आप किसी को कहेंगे—तू पगाल है, गुस्सा अधिक करता है, तो वह कहेगा तू आलसी है, काम कम करता है। कोई क्रोध में बोले तो उस समय मौन होना अच्छा है। क्रोध में बोलने वाले के सामने बोलने से उसका गुस्सा तेज हो जाता है। उस समय शान्त रहने से उसकी ताकत घट जाती है।

एक व्यक्ति गुस्सा करता है, शेष सब सोच लें कि गुस्सा करना इसकी दुर्बलता है। यदि दुर्बलता को सामने बोलकर प्रोत्साहन न दिया जाए तो वह स्वयं शान्त हो जाएगा। **अतृणे पतितो वह्निः, स्वयमेवोपशाम्यति**—घासरहित स्थान पर होने वाली अग्नि स्वयं शान्त हो जाती है। वैसे प्रतिवचन का ईंधन न मिलने से क्रोध स्वयं शान्त हो जाता है। क्रोध को विफल करने का सरल साधन है—मौन।

इस प्रकार एक-एक व्यक्ति की दुर्बलता को समझ लें। सब समान नहीं हो सकते। समानता की भी एक सीमा है। समानता का अर्थ जड़ता नहीं है। क्या हम अंधकार और प्रकाश को एक समान मानें? यह मानेंगे तो हमारा अविवेक होगा। अंधकार में हो सकता है, प्रकाश में नहीं। जिसके ज्ञान-चक्षु नहीं खुले हैं उसके लिए सब समान हैं। एक दिन एक कवि ने कहा—

मूर्खत्वं हि सखे! ममापिरुचितं यस्मिन् यदष्टौ गुणाः,
निश्चिंतो बहुभोजनोऽत्रपमनाः नक्तं दिवा शायकः ॥
कार्याकार्यविचारणान्धबधिरो मानापमाने समः ।
प्रायेणामयवर्जितो दृढवपुः मूर्खः सुखं जीवति ॥

मूर्ख में आठ गुण होते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. निश्चिंत—वह विचाररहित होता है। वह काम करने की चिन्ता का भार नहीं ढोता।
२. बहुभोजी—वह बहुत खाता है।
३. अत्रपमना—वह लज्जारहित होता है।
४. वह रात-दिन सोने वाला होता है।
५. वह कर्तव्य और अकर्तव्य के चिन्तन के लिए बधिर (गूंगा) और अंधा होता है।
६. वह मान और अपमान को समान मानने वाला होता है। मान और अपमान में समान रहने का नाम वीतराग है। समत्व की अनुभूति के कारण वीतराग मान और अपमान में समान रहते हैं। परन्तु मूर्ख को मान और अपमान की अनुभूति ही नहीं होती।
७. वह कभी रोगग्रस्त नहीं होता।
८. वह पुष्ट शरीर वाला होता है, मोटा-ताजा होता है।

प्रतिक्रिया का जीवन

अहिंसक इसलिए व्यवहार नहीं करता कि दूसरा मेरे साथ अच्छा व्यवहार कर रहा है। वह बुरा व्यवहार करने वाले के प्रति भी अच्छा व्यवहार करता है। कूप में मुंह डालकर मूर्ख कहने वाला मूर्ख शब्द ही सुनेगा, क्योंकि ध्वनि की प्रतिध्वनि होती है, क्रिया की प्रतिक्रिया होती है।

- अहिंसक प्रतिबिम्ब का जीवन जीना नहीं चाहता।
- अहिंसक प्रतिक्रिया का जीवन जीना नहीं चाहता।
- अहिंसक प्रतिध्वनि का जीवन जीना नहीं चाहता।

एक ने अच्छा व्यवहार किया, इसलिए मैं उसके साथ अच्छा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार करूं—यह सौदा है, विनिमय है। अहिंसक जानता हुआ भी दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करता है। भगवान महावीर जानते थे कि कौशिक पैरों पर डंक मार रहा है, फिर भी उस पर अकृपा की दृष्टि नहीं हुई। दूसरी ओर लोग पूजा करने आए, उन पर भी वही दृष्टि रही।

जिस व्यक्ति में समता का विकास नहीं हुआ है, उसमें अहिंसा स्थापित नहीं हो सकती। जिसमें शक्ति का विकास न हो, वह अहिंसक नहीं हो सकता। अहिंसा की प्रतिष्ठा कैसे होगी। यदि गुणों को स्थान नहीं दिया जाएगा तो? आचरण में तेज कैसे आए, इस पर विचार करना है।

समत्व की भूमिका

सामायिक का अधिकारी कौन हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान महावीर ने कहा—जिसके मन में सब जीवों के प्रति समता का अंकुर उत्पन्न हो गया हो वह सामायिक करने का अधिकारी है। श्रावक कुल में जन्म लेने मात्र से सामायिक का अधिकारी नहीं होता। सामायिक करने वाले स्वयं से उत्तर लें कि वे सामायिक करने के अधिकारी हैं या नहीं? जिसमें सामायिक नहीं होती, वह अहिंसा व्रत को स्वीकार नहीं कर सकता। अहिंसक वही होता है जिसमें सामायिक होती है। जो आदमी सामायिक करना जानता है, वह अहिंसक होता है। जो अहिंसक होता है, वही सामायिक करना जानता है।

अहिंसा जीवन के लिए उपयोगी है। वह हमारे व्यवहार को सुधारने की कला है। जिसके व्यवहार में अहिंसा का असर नहीं हो, उसे कैसे मान लें, वह धार्मिक है? धर्म के द्वारा आचरणों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में परिवर्तन आता है और उससे व्यवहार में परिवर्तन आता है। अहिंसा व्रत को स्वीकार करने से शेष धर्म स्वयं आ जाता है। केवल व्रत को स्वीकार करें, उसे व्यवहार में न लाएंगे तो वह भार बन जाएगा। अपेक्षा है, व्रत भार न बनकर जीवन के विकास का हेतु बने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाज के परिप्रेक्ष्य में अर्थहिंसा और अनर्थहिंसा

'स्तुतावशक्तिः तव योगिनां न किं,
गुणानुरागस्तु ममापि निश्चलः ।
इदं विनिश्चित्य तव स्तवं वदन्,
न बालिशोप्येष जनोपराध्यति ॥'

'भगवन्! मैंने आपकी स्तुति करनी चाही। फिर सोचा, मेरे में स्तुति करने की शक्ति है या नहीं। प्राचीन बड़े-बड़े आचार्यों ने आपकी स्तुति की है। क्या उनमें शक्ति थी? नहीं थी, फिर भी उन्होंने स्तुति की है। परन्तु उस स्तुति करने का आधार क्या था? उत्तर मिलता है कि उनमें गुणानुराग था। तब मैंने भी सोचा, मेरे में शक्ति नहीं है, किन्तु गुणानुराग तो है ही। यही सोचकर मैं आपकी स्तुति करता हूं। बहुत-से काम शक्ति से नहीं, गुणानुराग से हो जाते हैं।

स्तुति का अर्थ है—अपनी विनम्र भावना का प्रकाशन। अहं सबसे अधिक खतरनाक है। अहं से व्यक्ति की सारी क्षमताएं समाप्त हो जाती हैं। जिसमें विनम्रभाव है, उसमें जैसा होता है वैसा समझने की क्षमता आ जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहं त्याज्य है, वैसे ही हीनभावना भी त्याज्य है। भगवान महावीर ने कहा है—**'नो हीणे नो अइरित्ते'** अहं से क्षमता समाप्त होती है और हीनता से कर्तृत्व समाप्त हो जाता है। कोई किसी से हीन नहीं है, कोई किसी से विशेष नहीं है। मुक्त आत्मा भी आत्मा की दृष्टि से अपने से अधिक नहीं है। न तो अपने को दूसरों से हीन समझो और न दूसरों को अपने से हीन समझो। दूसरों को अपने से बड़ा न मानो और न अपने को दूसरों से बड़ा मानो। जिसमें **'नो हीणे नो अइरित्ते'** आ गया, उसमें सामायिक आ गया। एक मुहूर्त्त का सामायिक नहीं, जीवन का सामायिक। सामायिक है समता की आराधना। समता का सूत्र समझ में आ जाए तो मानसिक बीमारियां मिट जाएं। जीवन में सामायिक आने से क्रोध का स्वभाव भी कम हो जाता है। बाप बेटे से कहता है; वह नहीं मानता है तो गुस्सा आ जाता है। सास की बात बहू न माने तो सास को क्रोध आ जाता है। सेठ को नौकर पर गुस्सा आ जाता है। यह गुस्सा दूसरे को हीन और अपने को बड़ा मानने से आता है। वह सोचता है—मैंने कहा, फिर भी उसने मेरी बात नहीं मानी। जो धर्म को समझता है, उसे चिन्तन करना चाहिए कि दूसरों को सुझाव देना मेरा काम है। हर व्यक्ति सोचने में स्वतंत्र है। वह यदि मेरी बात नहीं मानता है तो मुझे क्रोध क्यों करना चाहिए? भगवान महावीर ने जो समता का सूत्र दिया है, उसे अपनाकर हम हर कठिनाई से बच सकते हैं। धर्म का मर्म समझे बिना समता नहीं आती।

हिंसा

हिंसा दो प्रकार की है—अर्थहिंसा और अनर्थहिंसा। प्रयोजन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से की जाने वाली हिंसा अर्थहिंसा है। निष्प्रयोजन से की जाने वाली हिंसा अनर्थहिंसा है। धर्म कहता है—हिंसा मत करो। उससे दुःख पैदा होता है।

खेती, व्यापार का काम, ब्याज आदि सब हिंसा है। लोग ब्याज को अहिंसा का व्यापार मानते हैं। आचार्य जिनसेन ने ब्याज को बड़ी हिंसा माना है। ब्याज आर्त्त और रौद्र ध्यान का बहुत बड़ा कारण है। हमारी दृष्टि ऐसी हो गयी है कि हम दृश्य हिंसा को ही हिंसा मानते हैं। मूल हिंसा आर्त्त और रौद्र ध्यान है। ब्याज में मानसिक हिंसा चलती है। प्रश्न उठता है—सब जगह हिंसा है तब हम क्या करें? क्या जंगल में चले जाएं? कहीं पर भी चले जाओ, यदि मन में हिंसा है तो जंगल में चले जाने से अहिंसा नहीं होगी। अर्थहिंसा मनुष्य छोड़ नहीं सकता, क्योंकि बिना अर्जन किए परिवार का काम नहीं चल सकता। परन्तु अनर्थहिंसा तो आवश्यक नहीं है, उसे छोड़ा जा सकता है। भगवान महावीर ने अव्यावहारिक बात नहीं कही कि तुम धार्मिक बनते हो तो व्यापार बन्द कर दो। उन्होंने कहा—व्यापार में अनावश्यक हिंसा मत करो। यह सम्भाव्य बात है। जैन श्रावकों का जीवन इसी आधार पर बीता था।

गुजरात में एक सेनापति जैन था। राजा कार्य से बाहर गया था। शत्रु ने अवसर देख आक्रमण कर दिया। रानी को पता चला। सेनापति को बुलाया। 'रण में मैं चलूंगी।' सेनापति ने कहा—'नहीं, आप तो हमें आदेश दें।' आदेश ले सेनापति युद्धस्थल में चला गया सूर्यास्त हो गया, इसलिए लड़ाई न हो सकी। सुबह लड़ाई शुरू होने वाली थी। प्रतिक्रमण का समय आया तो सेनापति ने प्रतिक्रमण किया—**एगिंदिया, बेइंदिया**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेइंदिया अभिहया परिताविया तस्स मिच्छामि दुक्कडं। कंथु चींटी आदि किसी जीव की हिंसा की हो तो **मिच्छामि दुक्कडं**। यह शब्दावली सहायक सेनापतियों ने सुनी तो वे चौंके—यह क्या? वे रानी के पास गए और बोले—'क्या हमें मरवाना है और देश को नष्ट करवाना है? आपने सेना की बागडोर किसको सौंप दी? वह तो एकेन्द्रिय को भी मारने का पाश्चात्ताप कर रहा है।' रानी घबराई। सेनापति को बुलाया और पूछा—'आप कल क्या कर रहे थे।?' सेनापति बोला—'पाक्षिक प्रतिक्रमण कर रहा था।' रानी ने कहा—'एकेन्द्रिय को मारने का **'मिच्छामि दुक्कडं'** ले रहे थे, फिर आप लड़ाई कैसे लड़ेंगें?' सेनापति ने कहा—मैं जैन श्रावक हूं, भगवान महावीर का अनुयायी हूं। भगवान ने बताया है कि बिना प्रयोजन एक दातून भी तोड़ना हिंसा है। साथ-साथ मैं नागरिक भी हूं। उसके कर्तव्य से दूर कैसे रह सकता हूं? कल आप देख लेना' रानी को उस पर भरोसा था। सुबह लड़ाई हुई और सेनापति ने अपनी वीरता दिखाई। शत्रु को सेना भाग खड़ी हुई।

गांधीजी के पास एक व्यक्ति बहुत सारी दातून लेकर आया। गांधीजी ने कहा—जरूरत से अधिक दातून काटकर वृक्ष को कष्ट देने की क्या आवश्यकता थी? गांधीजी में अहिंसा का कितना विवेक था? पता नहीं, जैन कहलाने वालों में इतना विवेक है या नहीं।

गांधीजी के पास रहने वाले एक व्यक्ति ने खटिया सरकाई। गांधीजी ने उसे देखा और पूछा—सरकाते समय क्या देखा था कि नीचे जीव थे या नहीं?

अनावश्यक हिंसा को गांधीजी क्षम्य नहीं मानते थे। अर्थहिंसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने जीवन को विवशता है, पर अनर्थहिंसा अक्षम्य है। श्रावक का पहला कार्य है कि वह अनर्थहिंसा का त्याग करे। लोग प्रमादवश और भोग के लिए हिंसा कर लेते हैं। अर्थहिंसा का जहां प्रसंग आता है, वहां अनर्थहिंसा जितनी चिंता कर लेते हैं। सिद्धान्त का भी कहीं-कहीं दुरुपयोग हो जाता है, जिससे व्यवहार में भी कठिनाई आती है।

आज समाज में नेतृत्व क्यों नहीं है? संगठन व अनुशासन क्यों नहीं है? कारण स्पष्ट है—समाज है कहां? हजार व्यक्तियों का होना ही समाज नहीं है। समाज वह होता है, जहां व्यक्तियों के हितों का चिन्तन हो, एक-दूसरे की कठिनाइयों को समझा जाता हो। पैर में कांटा चुभते ही चोटी में दर्द की सूचना मिल जाती है। सिर नीचे झुकाकर देखता है और हाथ को आदेश देता है उसे निकालने के लिए। परस्परता का सम्बन्ध समाज का लक्षण है। किसी एक को दुःख होता हो, वहां किसी को भी चिन्ता न हो, अपितु तत्त्ववादी चिन्तन यह हो कि करने वाला भोगेगा—वह समाज नहीं है, अस्थिसंघात मात्र है। जहां एकता की अनुभूति न हो, वह समाज कैसे बन सकता है?

लोग सोचते हैं, हमारा संगठन बना रहे। एक-दूसरे की बात को माना जाए। आप सोचिए, वह दूसरे की बात तब मानेगा जब कि उसे पता लगेगा कि वह हमारे हित की बात सोचता है और कहता है। गुरुदेव हमारे हित के विषय में न सोचें, हमारे कष्ट में सहयोगी न हों तो हम उनकी आज्ञा क्यों मानेंगे? जब से हम लोगों को दीक्षित किया है, उसी समय से वे हमारे हितों की चिन्ता करते हैं। हमें ज्ञान दिया और प्रगति की दिशा दी। दुःख-सुख की चिन्ता की है। मुनिश्री डूंगरमलजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साध्वी रूपांजी काठियावाड़ में थे। वहां काफी विरोध चल रहा था। आहार और पानी नहीं मिल रहा था। तब पूज्य गुरुदेव ने स्वयं पांच विगय खानी बन्द कर दी और द्रव्यों में कमी कर दी। हम लोगों ने पूछा--'आप विगय क्यों नहीं लेते?' उत्तर मिला--'ऐसे ही।' जब काठियावाड़ से समाचार मिला कि वहां की व्यवस्था ठीक हो गयी है। तब गुरुदेव ने विगय लेना स्वीकार किया। इसका नाम है समाज, तभी लोग आदेश मानते हैं। जहां सामाजिकता और परस्परता नहीं होती, वहां कौन किसका कहना मानता है।

बड़े लोग अपने लिए अच्छा से अच्छा खाते हैं, लेकिन जब समाज का प्रश्न आता है तब उसे अनर्थदण्ड (हिंसा) मान लेते हैं। यहीं चिन्तन में त्रुटि आ गयी है। इसको मिटाए बिना स्वस्थता नहीं आती। आनन्द श्रावक के जीवन को देखें। पांच सौ हल चलते थे, चालीस हजार गाय-बैल थे। चार करोड़ हिरण्य व्यापार में लग रहे थे। किन्तु व्यक्तिगत जीवन संयमित था। फलों में आंवला से अतिरिक्त फल नहीं खाता था। एक अंगोछे से ज्यादा काम में नहीं लेता था। यह था अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड का विवेक (अहिंसा और अनर्थहिंसा का विवेक)। अपने जीवन में संयम था और सारी सम्पत्ति परिवार तथा समाज के लिए थी। आज उल्टा चक्र चल रहा है। अपने लिए सब कुछ किया जाता है और समाज के लिए संयम की बात सोची जाती है। होना यह चाहिए कि व्यक्तिगत जीवन में संयम हो, कम-से-कम वस्त्र और खाद्य सामग्री का उपयोग हो, जिससे पदार्थों के प्रति आसक्ति न बढ़े।

सबसे पहले अनर्थहिंसा को समझें। शादी में पचास हजार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का खर्च करते हैं, प्रदर्शन करते हैं, यह अनर्थहिंसा नहीं है? शादी में हजारों को खिलाते हैं, बाहर जाकर वे ही गालियां देते हैं और आलोचना करते हैं—बिना प्रयोजन इतना खर्च किया है। प्रयोजन की व्यर्थता सिद्ध होने पर अर्थहिंसा भी अनर्थहिंसा हो जाती है। आडम्बर और प्रदर्शन जो अनावश्यक होता है, उसे बन्द करना चाहिए। अर्थहिंसा आवश्यकतावश स्वीकार की आती है। जो आवश्यकता से अधिक होता है, वह अनर्थहिंसा की श्रेणी में चला जाता है। बैलगाड़ी में खंजन देना आवश्यक होता है। वहां भी दो-चार सेर तेल डालें तो अनावश्यक हो जाता है। जितने से परिवार का काम चल सके वहां तक तो आवश्यक या अर्थहिंसा है, पर उससे अधिक हो, वह अनावश्यक या अनर्थ-हिंसा है। हर व्यक्ति यह विवेक कर सकता है कि यह अर्थहिंसा है या अनर्थहिंसा है। समाज में सभी हिंसा छूट जाए, सम्भव नहीं है, क्योंकि समाज चल नहीं सकता। पर अनर्थहिंसा से बचा जा सकता है। धर्म क्यों करें? अनर्थहिंसा को समाप्त करने के लिए। जो इस अर्थ में धर्म को स्वीकार करता है। वह संयमी बनता है, व्यक्तिगत जीवन में संयम को स्थान देता है।

□□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म के सूत्र

आचार्य महाप्रज्ञ

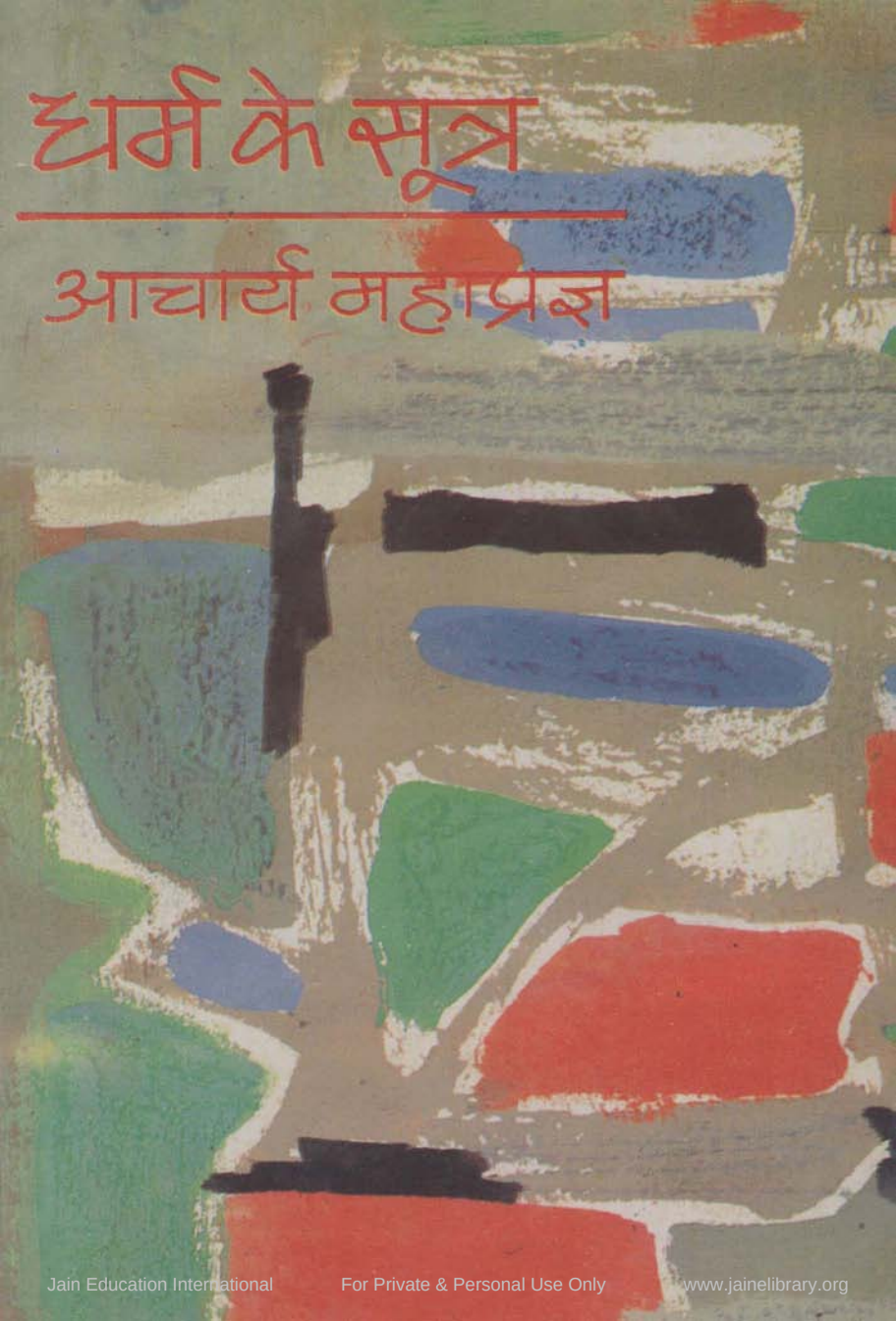

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org